॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

धर्म की कुंजी

(मंगला चरण)—नमः श्री वर्द्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते॥

भावार्थ—लोकालोक के जानने वाले चार घातियारूपी कर्म मल रहित महावीर स्वामी को मैं नमस्कार करता हूं।

धर्म का लक्षण

धर्म का स्वरूप दश लक्षण रूप है। इन दश चिन्हनि करि अन्तर्गत धर्म जानिये है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य, ए दश धर्म के लक्षण हैं। ज्ञातैं धर्म तो वस्तु का स्वभाव ही कूं कहिये हैं। लोक में जेते पदार्थ हैं तितने अपने स्वभाव कूं कदाचित नाहीं छांड़ें हैं। जो स्वाभाव का नाश हो जाय तो वस्तु का अभाव होय जाय। आत्मा नाम वस्तुका स्वभाव क्षमादिक रूप है अर क्रोधादिक कर्म-जनित उपाधि हैं आवरण हैं। क्रोध नाम कर्म का अभाव होय तदि क्षमा नाम आत्मा का स्वभाव स्वयमेव रहै है ऐसें ही मानका अभावतें मार्दव गुण, माया के अभाव तैं आर्जव गुण अर लोभ के अभावतैं शौच गुण इत्यादिक आत्मा के गुण हैं। ते कर्म के अभावतें स्वयमेव प्रकट होंय हैं। तातें ये उत्तम क्षमादिक आत्मा का स्वभाव है; मोहनी कर्म के भेद क्रोधादिक कषायनि करि अनादिका आच्छादित होय रहे हैं। कषाय के अभावतैं क्षमादिक स्वाभाविक आत्मा का गुण उघड़ै है।

अब उत्तम क्षमा गुण कूँ वर्णन करैं हैं—क्रोध वैरी का जीतना सो ही उत्तम क्षमा है। कैसाक है क्रोध वैरी ? इस जीवन के निवास करने का स्थान जे संयम भाव संतोप भाव निराकुलता भाव ताकूं दग्ध करने कूं अग्नि समान है। सम्यग्दर्शनादिरूप रत्ननिका भंडार कूं दग्ध करै है। यश कूं नष्ट करै है। अपयश रूप कालिमा कूं वधावै है। धर्म अधर्म का विचार नष्ट होय जाय है। क्रोधी कैं अपना मन वचन काय आकै वस नाहीं रहै है। वहुत काल हू की प्रीति कूं क्षण मात्रमैं विगाड़ि महान वैर उत्पन्न करै है। क्रोध रूप राक्षस के वस होय सो असत्य वचन लोक-निंद्य भील चांडालादिकनि के वोलने योग्य वचन वोलै है। क्रोधी समस्त धर्म लोपै है। क्रोधी होय तव पितानें मारि नाखै। माता कूं पुत्र कूं स्त्री कूं वालक कूं स्वामी कूं सेवक कूं मित्र कूं मारि प्राण रहित करै है। अर तीव्र क्रोधी आपका हू विपतैं शस्त्रतैं मरण करै है। उँचे मकान तथा पर्वतादिकतैं पतन करै है। कूपमें पड़ै है। क्रोधी की कोऊ प्रकार प्रतीत नाहीं जाननी। क्रोधी है सो यमराज तुल्य है। क्रोधी होय सो प्रथम तो अपना ज्ञान दर्शन क्षमादिक गुणनि कूँ घातै है; पीछै कर्म के वशतें अन्यका घात होय वा नाही होय। क्रोध के प्रभावतैं महा तपस्वी दिगम्बर मुनि धर्मतैं भ्रष्ट होय नरक गये हैं। यो क्रोध है सो दोऊ लोक का नाश करै है। महा पापवंध कराय नरक पहुँचावै है। वुद्धि भ्रष्ट करै है। निर्दई करदे है। अन्यकृत उपकार कूं भुलाय कृतघ्न करै है। तातैं क्रोध समान पाप नाहीं। इस लोक में क्रोधादि कपाय समान अपना घात करनेवाला अन्य नाहीं है। जो लोक में पुन्यवान हैं महाभाग्य है जिनका दोऊ लोक

सुधरना है तिनही के क्षमा नाम गुण प्रगट होय है। क्षमा जो पृथ्वी ताकी जो सहने का स्वभाव सो क्षमा है। और सम्यक स्वपर कूँ हित-अहित कूँ समझ करि जो असमर्थनि करि किया हू उपद्रवनि कूं आप समर्थ होय करके राग-द्वेष रहित हुआ सहै है, विकारी नाहीं होय है, ताकूं उत्तम क्षमा कहिये हैं। इहां उत्तम क्षमा शब्द सम्यग्ज्ञान सहित होने कूं कहा है। उत्तम क्षमा त्रैलोक्य में सार है। उत्तम क्षमा संसार समुद्र तैं तारने वाली है। उत्तम क्षमा है सो रत्नत्रय कूँ धारण करने वाली है। उत्तम क्षमा दुर्गति के दुःखनि कूं हरने वाली है। जाके क्षमा होय ताके नरक अर तिर्यंच दोऊ गतिन में गमन नाहीं होय। उत्तम क्षमा की लार अनेक गुणनिके समूह प्रगट होय हैं। मुनीश्वरनि कूँ तो अति प्यारी उत्तम क्षमा है। उत्तम क्षमा का लाभ कूँ ज्ञानी जन चिंतामणि रत्न माने हैं। अर उत्तम क्षमा ही मन की उज्ज्वलता करै है। क्षमा गुण विना मन की उज्ज्वलता अर स्थिरता कदाचित ही नाहीं होय है। वांछित सिद्ध करने वाली एक क्षमा ही है। इहां क्रोध के जीतने की भावना ऐसी जाननी। कोऊ आपकूँ दुर्वचनादि करि दुःखित करै, गाली दे, चोर कहै, अन्यायी पापी दुराचारी दुष्ट नीच वा दोगलो चांडाल पापी कृतघ्नी ऐसे अनेक दुर्वचन कहै, तो ज्ञानी ऐसी भावना करै– जो याका मैं अपराध किया है कि नाहीं किया है? जो मैं याका अपराध किया तथा राग-द्वेष-मोह का वसतैं कोई बात करि दुखाया है तदि तो मैं अपराधी हूं, मोकूँ गाली दैना, धिक्कार देना, नीच चोर कपटी अधर्मी कहना न्याय है। मोकूँ इस सीवाय भी

दंड देता सो भी ठीक है। मैं अपराध किया है, मोकूँ गाली सुनि रोष नाहीं करना ही उचित है। अपराधी कूँ नरक में दंड भोगना पड़ै है, तातैं मेरा निमित्तसूं याके दुःख भया तदि क्लेशित होय दुर्वचन कहै है, ऐसा विचार करि क्लेशित नाहीं होय क्षमा ही करै है। अर जो दुर्वचन कहने वाला मन्द-कषायी होय तो आप जाय क्षमा ग्रहण करावने कूँ कहै—भो कृपाल ! मैं अज्ञानी प्रमाद के वस वा कषाय के वस होय आपके चित कूँ दुखाया सो अब मैं अपराध माफ कराऊं हूँ, आगातैं ऐसा कार्य चूक करि नाहीं करूंगा। एक वार चूकि जाय ताकी चूक कूँ महन्तपुरुष माफ करें हैं। अर जो आगलो न्याय-रहित तीव्र-कषायी होय तो वासूँ अपराध माफ करावनेको जाय नाहीं कालांतर में क्रोध उपशांत पाछे माफ करावै अर जो आप अपराध नाहीं किया अर ईर्षा भावतैं केवल दुष्टतातैं आप कूँ दुर्वचन कहै तथा अनेक दोष लगावै तो ज्ञानी किंचित्सं-क्लेश नाहीं करै ऐसा विचार करै जो मैं याका धन हरया होय तथा जमी जायगा खोसी होय तथा याकी जीव का विगाड़ी होय चुगली खाई होय तथा याका दोष कहणादिकरकैं जो मैं अपराव किया होय तो मोकूँ पश्चाताप करना उचित है अर जो मैं अपराध नाहीं किया तदि मोकूँ कुछ फिकर नाहीं करना। यो दुर्वचन कहै है सो नाम कूँ कहै है तथा कुलकूँ कहै है सो नाम मेरा स्वरूप नाहीं जाति कुलादि मेरा स्वरूप नाहीं मैं तो ज्ञायक हूं जाकूँ कहै सो मैं नाहीं। मैं हूं ताकूँ वचन पहुँचै नाहीं तातैं मोकूँ क्षमा ग्रहण करना ही श्रेष्ठ है। वहुरि जो यो दुर्वचन कहै है सो मुख याका, अभिप्राय याका, जिह्वा दन्त ओष्ठ याका अर शब्द अर

पुद्गल याका परिणामनिकरि शब्द उपज्या ताकूँ श्रवण करि जो मैं विकार कूँ प्राप्त होऊं तो या मेरी बड़ी अज्ञानता है। बहुरि जो ईर्षावान दुष्ट पुरुष मोकूँ गाली देहै, सो स्वभावकरि देखिये तो गाली कछु वस्तु नाहीं। मेरे कहां हूँ गाली लगी नाहीं दीखे हैं। अवस्तु में देने लेने का व्यवहार ज्ञानी होय सो कैसे संकल्प करै। बहुरि जो मोकूं चोर कहै; अन्यायी, कपटी, अधर्मी इत्यादिक कहै तहां ऐसा चिंतवन करै जो हे आत्मन्! तू अनेक बार चोर हुआ; अनेक जन्म मैं व्यभिचारी, ज्वारी, अभक्ष्यभक्षी, भील, चाण्डाल, चमार, गोला, बांदा; कूकर, शूकर, गधा इत्यादिक तिर्यंच तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी होय होय आया अर संसार में भ्रमण करता अनेक बार होऊंगा। अब तो कूकर, शूकर, चोर, चाण्डाल कहै ताकू श्रवण करि ताकूं क्लेशित होना बड़ा अनर्थ है, अथवा ये दुष्टजन दुर्वचन कहे हैं सो याको अपराध नाहीं; हमारा बांध्या पूर्व जन्म कृत कर्म का उदय है सो याके दुर्वचन कहने के द्वारकरि हमारे कर्म की निर्जरा होय है सो हमारे बड़ा लाभ है इनका यहहू उपकार है जो ये दुर्वचन कहने वाले अपना पुण्य का समूह का तो दोप कहने करि नाश करैं हैं और मेरे किये पाप कूं दूरि करैं हैं ऐसे उपकारी तें जो मैं रोष करूं तो मो समान कोऊ अधम नाहीं है। बहुरि यो तो मोकूं दुर्वचन ही कह्या है मारया तो नाहीं। रोष करि मारने लगि जाय है। क्रोधी तो अपने पुत्र-पुत्री-स्त्री-बालादिक कूं मारै है सो मोकूं मारया नाहीं यो भी लाभ है और दुष्ट आपकूं मारै तो ऐसा विचारै जो मोकूं मारया ही प्राण रहित तो नाहीं किया। दुष्ट तो

आपका मरण नाहीं गिन करके भी अन्य कूं मारै है यों भी मेरे लाभ है और जो प्राण रहित करै तो ऐसा विचारे एक बार मरणों ही है कर्म का ऋण चुक्यो। हम यहां ही कर्म के ऋण रहित भये हमारा धर्म तो नाहीं नष्ट भया। प्राण धारण तो धर्म ही ते सफल है ये द्रव्य प्राण तो पुद्‌गलमय हैं। मेरा ज्ञान दर्शन क्षमादि धर्म ये भाव प्राण हैं। इनका घात क्रोध करि नाहीं भया इस समान मेरे लाभ नहीं हैं। बहुरि जो कल्याणरूप कार्य हैं तिनमें अनेक विघ्न आवै ही हैं। जो मेरे विघ्न आया सो ठीक ही है। मैं तो समभाव कूं आश्रय करूं और जो उपद्रव आवते मैं क्षमा छांड़ि विकार कूं प्राप्त हूँगा तो मोकूं देखि अन्य मन्द ज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्म तें शिथिल हो जायंगे तो मेरा जन्म केवल अन्य के क्लेश के अर्थ ही भया तथा मैं वीत-राग धर्म धारण करके हू क्रोधी, विकारी, दुर्वचनी होऊं तो मोकूं देखि अन्यहू क्रोध में प्रवर्तने लगि जाय। यदि धर्म की मर्यादा भङ्ग कर पाप की परिपाटी चलाने वाला मैं ही प्रधान भया तातें क्षमा गुण प्राण जाते हू धन अभिमान नष्ट होते मोकूं छांड़ना उचित नाहीं। बहुरि पूर्व में अशुभ कर्म उपजाया ताका फल मैं ही भोगूँगा। अन्य जे जन हैं ते तो निमित्त मात्र हैं। इनके निमित्त तें पाप उदय नाहीं आता तो अन्य के निमित्त तें आता। उदय में आया कर्म तो फल दिये बिना टलता नाहीं। बहुरि ये लौकिक अज्ञानी मेरे विषय क्रोधित होय दुर्वचनादिक करि उपद्रव करैं हैं और जो मैं भी यानी दुर्वचनादि करि उत्तर करूं तो मैं तत्त्वज्ञानी और ये अज्ञानी दोऊ समान भये। हमारा तत्त्व-

ज्ञानोपना निरर्थक भया। न्याय मार्ग तैं उदय मैं आया मेरा पाप कर्म ताकूं सन्मुख होतें कौन विवेकी आत्माकूं क्रोधादिकनि के वस करै। भो आत्मन्! पूर्वे बांध्या जो असाता कर्म ताका अब उदय आया ताकूं इलाज रहित अशोक जानि करके समभावनि तैं सहौ। जो क्लेशित होय भोगोगे तो असाता कूं तो भोगोगे ही और नवीन बहुत असाता का वध और करोगे तातैं होनहार दुःख तैं निःशंकित होय समभाव तैं ही सहौ। ये दुष्टजन बहुत हैं अपना सामर्थ्य करके मेरे रोष रूप अग्नि कूं प्रज्वलित करि मेरा समभाव रूप सम्पदा कूं दग्ध किया चाहैं हैं। अब यहां जो असावधान होय क्षमा कूं छांड़ दूंगा तो अवश्य ही साम्य-भाव नष्ट करके धर्म अर यश का नाश करने वाला हो जाऊंगा। तातैं दुष्टनिके संसर्ग में सावधान रहना उचित है। ज्ञानी मनुष्य तो नाहीं सहा जाय ऐसा क्लेश कूं उत्पन्न होते हू पूर्व कर्मका नाश होना जानि हर्षित ही होय है। जो वचन कंट-कनि करि वेध्या जो मैं क्षमा छांड़ दूंगा तो क्रोधी और मैं समान भया और जो वैरी नाना प्रकार जो दुर्वचन मारण-पीड़न करके मेरा इलाज नाहीं करै तो मैं संचय किये अशुभ कर्म तिनतैं कैसें छूटता? तातैं वैरी हू हमारा उपकार ही किया है अथवा तातैं विवेकी होय जो जिन आगम के प्रशाद तैं साम्यभाव का अभ्यास किया ताकी परीक्षा लैने को ये वैरी रूप परीक्षा स्थान प्रकट भया है। सो मेरे भावनि की परीक्षा करिये। परीक्षा करने कूं ही कर्म उदय भये हैं। जो समभाव की मर्याद कूं भेदि करि जो मैं वैरिनि में रोष करूं तो ज्ञान-नेत्र का धारक हू मैं समभाव कूं नाहीं प्राप्त

होय क्रोध रूप अग्नि में भस्म होय जाऊं। मैं वीतरागके मार्ग में प्रवर्तन करने वाला संसार की स्थिति छेदने में उद्यमी; अर मेरा ही चित्त जो द्रोह कूं प्राप्त हो जाय तो संसार के मार्ग में प्रवर्त्तते मिथ्यादृष्टीनि के समान मैं हू भया और जो दुष्ट जननि कूं न्याय धर्म रूप मार्ग समझाय और क्षमा ग्रहण कराया जो नाहीं समझै और क्षमा ग्रहण करै तो ज्ञानी जन वासूं रोष नाहीं करें। जैसें विष दूरि करने वाला वैद्य कोऊका विष दूरि करनेको अनेक औषधादि देय विष दूरि करया चाहै और वाका जहर दूरि नाहीं होय तो वैद्य आप जहर नाहीं खाय है। जो याका विष दूर नाहीं भया तो मैं हूँ विष-भक्षण करि मरूं, ऐसा न्याय नाहीं है। तैसें ज्ञानी जन हू दुष्टजनकी पहली दुष्टता की जाति पिछानें जो यो दुष्टता छांड़ैगा वा नाहीं छांड़ैगा या अधिक दुष्टता धरैगा ऐसा विचारि जो विपरीत परणमता दीखै ताकूं तो उपदेश ही नाहीं देना और कुछ समझने लायक योग्यता दीखै तो न्याय वचन हित मित रूप कहना और दुष्टता नाहीं छाड़ै तो आप क्रोधी नाहीं होना जो यो मोकूं दुर्वचनादि उपद्रव करि नाहीं कम्पायमान करै तो मैं उपसमभाव करि धर्म का शरण कैसें ग्रहण करता। तातैं मोकूं पीड़ा करने वाला हू मोकूं पाप में भय-भीत करि धर्म सूं सम्बन्ध कराया है। तातैं पीड़ा करने वाला हू मेरा प्रमादीपना छुड़ाय बड़ा उपकार किया है। बहुरि जगत में केतेक उपकारी तो ऐसे हैं जो अन्य जनके सुख होनेके निमित्त अपना शरीर कूं छांड़ै हैं अर धन कों छांड़ै हैं तो मेरे दुर्व-चन बन्धनादिक सहने में कहा जायगा। मोकूं दुर्वचन कहे ही

अन्य कै सुख हो जाय तो मेरे कहा हानि है। बहुरि जो अपने कूं पीड़ा करने वाले तैं रोप नाहीं करूं तो वैरी के पुण्य का नाश होय है और आत्मा के हित की सिद्धि होय है और पीड़ा करने वाले तैं रोप करूं तो मेरा आत्मा का हित का नाश होय दुर्गति होय। यातैं प्राणनि का नाश होते हू दुष्टनि प्रति क्षमा करना ही ही एक हित सत्पुरुष कहैं हैं। तातैं आत्म-कल्याण की सिद्धि कै अर्थि क्षमा ही ग्रहण करूं अथवा दुष्टनि करि दुर्वचनादिक पीड़ा करने तैं मेरे जो क्षमा प्रकट भई है सो मेरे पुण्य का उदय तैं या परीक्षा-भूमि प्रकट भई है, जो मैं इतना काल तैं वीतराग का धर्म धारण किया सो अब क्रोधादिक के निमित्ति तैं साम्यभाव रहा कि नाहीं रहा ऐसी परीक्षा करूं। बहुरि सोही साम्यभाव प्रशंसा योग्य है और सोही कल्याण का कारण है जो मारने के इच्छक निर्दयीनिकरि मलीन नाहीं किया गया। बहुरि चिरकाल तैं अभ्यास किया शास्त्र करकैं और साम्यभाव करकैं कहा साध्य है यों प्रयोजन पड्यां व्यर्थ होजाय है। धर्म तो सोही प्रशंसा योग्य है जो दुष्टनि के कुवचनादि होते नाहीं छूटै दृढ़ रहै। उपद्रव आये विना तो समस्त जन सत्य शोच क्षमा के धारक बन रहै हैं जैसे चन्दन वृक्ष कूं कुल्हाड़ा काटै तौ हू कुल्हाड़े के मुख कूं सुगन्ध ही करै तैसे जाकी प्रवृत्ति होय सोही सिद्धि कूँ साध्या है। बहुरि अन्य करि किया उपसर्ग तैं वा स्वयंमेव आया उपसर्ग तिन करि जाका चित्त कलुशित नाहीं होय सो अविनाशी सम्पदा कूँ प्राप्त होय है। अज्ञानी हैं ते अपने भावनि करि पूर्वे किया पाप कर्म ताके अर्थि तो नाहीं रोप करैं और जो कर्मके फल देने के बाह्य

निमित्त तिन प्रति क्रोध करैं हैं। जिस कर्मके नाश तैं मेरा संसार का सन्ताप नष्ट हो जाय सो कर्म स्वयंमेव भोग्या तो मेरे वांछित सिद्ध भया। वहुरि यों संसार रूप वन अनन्त संक्लेशनि कर भरया है। इसमें वसने वाला कै नाना प्रकार के दुःख नाहीं सहने योग्य हैं कहा? संसार में दुःख ही है। जो इस संसार में सम्यग्ज्ञान विवेक करि रहित और जिन सिद्धान्त तैं द्वेष करने वाले अर महा निर्दयी और परलोक के हित के अर्थि जिनके बुद्धि नाहीं और क्रोधरूप अग्नि करि प्रज्वलित और दुष्टता करि सहित विषयनि की लोलुपता करि अन्ध हट ग्राही महा अभिमानी कृतघ्नी ऐसे वहुत दुष्टजन नाहीं होते तो उज्वल बुद्धि के धारक सत्पुरुप तपश्चरण करि मोक्ष के अर्थि उद्यम कैसे करते? ऐसे क्रोधी दुर्वचन के वोलन हारे हट ग्राही अन्याय मार्गीनि की अधिकता देखि करकै ही सत्पुरुप वीतरागी भये हैं अर जो मैं वड़े पुण्य के प्रभावतैं परमात्मा का स्वरूप को ज्ञाता भयो अर सर्वज्ञकरि उपदेश्या पदार्थनिकूं हू निर्णयरूप जाण्या अर संसार के परिभ्रमणादिक तैं भयभीत होय वीतराग मार्ग में हू प्रवर्तन कीया अव हू जो क्रोध के वश हूंगा तो मेरा ज्ञान चारित्र समस्त निस्फल होयगा अर धर्म का अपयश करावनवारा होय दुर्गति का पात्र हूंगा। वहुरि और हू पद्मनन्द मुनि कह्या है जो मूर्ख जन करि वाधा पीड़ा अर क्रोध के वचन अर हास्य अर अपमानादिक होते हू जो उत्तम पुरुपनि का मन विकार कूं प्राप्त नाहीं होय ताकूं उत्तमक्षमा कहिये हैं। सो क्षमा मोक्षमार्ग मैं प्रवर्तते पुरुष के परम सहायता कूं प्राप्त होय है। विवेकी चिंत-

वन करैं हैं—हम तौ राग द्वेषादि मल रहित उज्ज्वल मन करि तिष्ठां। अन्य लोक हमकूं खोटा कहो तथा भला कहो हमकूं कहा प्रयोजन है? वीतराग धर्म के धारकनि कूं तो अपने आत्मा का शुद्धपना साधने योग्य है। जो हमारा परिणाम दोष सहित है, अर कोऊ हित् हमकूं भला कह्या तो भला नाहीं हो जावेंगे, अर हमारा परिणाम दोष रहित है अर कोऊ हमकूं वैर बुद्धि तैं खोटा कह्या तो हम खोटा नाहीं हो जावेंगे। फल तो अपनी जैसी चेष्टा आचरण होयगा तैसा प्राप्त होयगा। जैसें कोऊ कांच कूं रत्न कह दिया अर रत्न कूं कांच कह दिया तौहू मोल तौ रत्न ही पावैगा। कांच खण्ड का बहुत धन कौन देवै? बहुरि दुष्टजन है ताका तौ स्वभाव परके दोष कह्यां हू नाहीं होय तौहू परके दोष कह्यां बिना सुखकूं प्राप्त नाहीं होय तातैं दुष्टजन हैं सो मेरे माहीं अविद्यमान हू दोष लोक मैं घर-घर मैं समस्त मनुष्यनि प्रति प्रगट करि सुखी होहू अर जो धन का अर्थी है सो मेरा सर्वस्व ग्रहण करि सुखी होहू अर जो वैरी प्राण हरण का अर्थी है सो सीघ्र ही प्राण हरो अर स्थान को अर्थी है सो स्थान हरो। मैं मध्यस्थ हूं रागद्वेष रहित हूं समस्त जगत के प्राणी मेरे निमित्त तैं तो सुखरूप तिष्ठो, मेरे निमित्त तैं किसी प्राणी के कोऊ प्रकार दुःख मति होहू या मैं घोषणा करि कहूं हूं क्योंकि मेरा जीवित तो आयु कर्म के आधीन अर धन का अर स्थान का जावना रहना पाप-पुण्य के आधीन है। हमारे किसी अन्य जीव से वैर विरोध नाहीं है, समस्त के प्रति क्षमा है। बहुरि जे आत्मनि जे मिथ्यादृष्टि अर दुष्टता सहित अर हित अहित का विवेक रहित मूढ़

ऐसे मनुष्यनि करि किया जे दुर्वचनादिक उपद्रवनि त अस्थिर हुआ वाधाकूं मानि क्लेशित होय रह्या है सो तीन लोक का चूड़ामणि भगवान वीतराग हैं ताहि नाहीं जान्या कहा ? मोही मिथ्या दृष्टि मूढ़नि के ज्ञान तो विपरीत ही होय हैं, कथनी के वशि हैं, तातें इनमें क्षमा ही ग्रहण करना योग्य है। क्षमा है सो इस लोक में परम शरण हैं, माता की ज्यों रक्षा करने वाली है, बहुत कहा कहिये जिन धर्म का मूल क्षमा है—याके आधार सकल गुण हैं—कर्म निर्जरा कौ कारण है हजारा उपद्रव दूरि करने वाली है, यातैं धन जीवितव्य जाते हू क्षमा कूं छांड़ना योग्य नाहीं। कोऊ दुष्टताकरि आप कूं प्राण रहित करैं तिस काल में हूं कटुक वचन मति कहो जो मारने वाले कूं भी अन्तर्गत वैर छाड़ि ऐसें कहो जो आप तो हमारे रक्षक ही हो परन्तु हमारा मरण आय पहुंच्या तदि आप कहा करो ? हमारे पाप कर्म का उदय आय गया तौ हू हमारा बड़ा भाग्य है. जो आप सारिखे महान पुरुषनि के हस्तादिक तें हमारा मरण होय अर जो हम सारिखा अपराधी कूं आप दण्ड नाहीं द्यो तो मार्ग मलीन हो जाय अर हम अपराध को फल नरक तिर्यंच गति में आगें भोगते सो आप हमकूं ऋण रहित किया। मैं आपसूं वैर विरोध मन वचन काय तैं छांड़ि क्षमा ग्रहण करूं हूं, अर आप भी मूनैं अपराध को दण्ड देय क्षमा ग्रहण करो। मैं रोगादिक कष्ट कूं भोगि करकें अति दुःख तैं मरण करतो सो धर्म का शरण सूं ऋण रहित होय सज्जनां की कृपा सहित मरण करस्यूं ऐसें मारने वाले सूं हूं वैर

त्यागि सम भाव करना सो उत्तम क्षमा है। ऐसें उत्तम क्षमा नामा धर्म कूं कह्या ॥ १ ॥

अब उत्तम मार्दव नाम गुण कूं कहै हैं—

मार्दव का स्वरूप ऐसा है जो मान कषाय करि आत्मा मैं कठोरता होय है सो कठोरता का अभाव होने तैं जो कोमलता होय सो मार्दव नाम आत्मा का गुण है अर जो आत्मा का अर मान कषाय का भेद कूँ अनुभव करि मान मद का छांड़ना सो उत्तम मार्दव नाम गुण है। मान कषाय तो संसार का वधावने वाला है अर मार्दव संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है। यो मार्दव गुण दया धर्म का कारण है। अभिमानी कैं दया धर्म का मूल ही ते अभाव जानना कठोर परिणामी तो निर्दयी ही होय है। मार्दव गुण समस्त के हित करने वाला है। जिनकैं मार्दव गुण है तिनही का व्रत पालना संयम धारणा ज्ञान का अभ्यास करना सफल है। अभिमानी का निष्फल है। मार्दव नाम गुण कषाय का नाश करने वाला है अर पंच इन्द्रिय अर मन कूँ दण्ड देने वाला है। मार्दव धर्म के प्रसाद तैं चित्त रूप भूमि मैं करुणा रूप वेल नवीन फैलें है। मार्दव करकैं ही जिनेन्द्र भगवान मैं तथा शास्त्रनि मैं भक्ति का प्रकाश होय है मद सहित के जिनेन्द्र कै गुणनि मैं अनुराग नाहीं होय है। मार्दव गुण करि कुमतिज्ञान के प्रसार का नाश होय है। कुमति नाहीं फैले है। अभिमान कै अनेक कुबुद्धि उपजें हैं। मार्दव गुण करि बड़ा विनय प्रवर्त्ते है। मार्दव करकैं बहुत काल का वैरी हू वैर छाड़ै है मान घटै तदि परि-

णामनि की उज्ज्वलता होय। कोमल परिणाम करकै ही दोऊ लोक की सिद्धि होय। कोमल परिणामी कूँ इस लोक में सुयश होय है परलोक में देवलोक की प्राप्ति होय है कोमल परिणाम करकै ही अन्तरङ्ग बहिरंग तप भूषित होय है अभिमानि का तप हू निन्दवे योग्य है कोमल परिणामी में तीन जगत के लोकनि का मन रञ्जायमान होय है। मार्दव करकै ही जिनेन्द्र का शासन जानिये है। मार्दव करकै अपना परका स्वरूप का अनुभव करिये है। कठोर परिणामी के आपा परका विवेक नाहीं होय है मार्दव करकै ही समस्त दोषनि का नाश होय है मार्दव परिणाम संसार समुद्र तैं पार करै है। यातैं मार्दव परिणाम कूँ सम्यग्दर्शन का अङ्ग जानि निर्मल मार्दव धर्म का स्तवन करो। संसारी जीवनि के अनादिकाल का मिथ्या दर्शन का उदय रहा है ताका उदय करि पर्याय बुद्धि हुआ जातिकूँ कुलकूँ विद्याकूँ बलकूँ ऐश्वर्यकूँ रूपकूँ तपकूँ धनकूँ अपना स्वरूप मानि इनका गर्व रूप होय रहा है। ताकूँ ये ज्ञान नाहीं है जो ये जाति कुलादिक समस्त कर्म का उदय के आधीन पुद्गल के विकार हैं विनाशीक हैं मैं अविनाशी ज्ञान स्वभाव अमूर्तीक हूं मैं अनादिकाल तैं अनेक जाति कुल बल ऐश्वर्यादिक पाय पाय छांड़े हैं मैं अब कौन में आपा धारूं? समस्त धन योवन इन्द्रिय जनित ज्ञानादिक विनाशीक हैं क्षण भङ्गुर हैं इनका गर्व करना संसार परिभ्रमण का कारण है। इस संसार में स्वर्गलोक का महाऋधि का धारक देव मरकरि एक समय में एकेन्द्रिय आय उपजै है तथा कूकर शूकर चांडालादिक पर्यायकूँ प्राप्त होय है। तथा चक्रवर्त्ती नवनिधि चौदह रत्ननि का

धारक एक समय मैं मरि सप्तम नरक का नारकी हो जाय है तथा वलभद्र नारायण का ऐश्वर्य नष्ट होय गया अन्य की कहा कथा है जिनकी हजारां देव सेवा करै तथा तिनके पुण्य का क्षय होते कोऊ एक मनुष्य पानी प्यावने वाला हू नाहीं तथा अन्य पुण्य रहित जीव कैसें मदोन्मत्त वन रहे हैं ? वहुरि जे उत्तम ज्ञान करि जगत में प्रधान हैं अर उत्तम तपश्चरण करने में उद्यमी हैं अर उत्तम दानी हैं तेहू अपने आत्माकूँ अति नीचा मानें हैं तिनके मार्दव धर्म होय है। यो विनयवानपनो मदरहितपनो समस्त धर्मकौ मूल है समस्त सम्यग्ज्ञानादि गुण को आधार है जो सम्यग्दर्शनादि गुणनि का लाभ चाहो हो अर अपना उज्वल यश चाहो हो अर वैर का अभाव चाहो हो तो मदनि कूँ त्यागि कोमलपना ग्रहण करो मद नष्ट हुवा विना विनयादिक गुण वचन की मिष्टता पूज्य पुरुपनिका सत्कार दान सन्मान एक हू गुण नाहीं प्राप्त होयगा। अभिमानी का विना अपराध हू समस्त वैरी हो जाय है। अभिमानी की समस्त निंदा करै है। अभिमानी का समस्त लोक पतन होना चाहैं हैं। स्वामी हू अभिमानी सेवक कूँ त्यागै है-अभिमानी कूँ गुरुजन विद्या देने में उत्साह रहित होय है। अपना सेवक पराङ्मुख होजाय मित्र भाई हितू पड़ौसी याका पतन ही चाहै है। पिता गुरु उपाध्याय तो पुत्रकों शिष्य कूँ विनय वंत देख करि ही आनंदित होय हैं। अविनई अभिमानी पुत्र या शिष्य वड़े पुरुपनि के मन हूं कूँ संतापित करै है। जातैं पुत्र का तथा शिष्य का तथा सेवक का तो ये ही धर्म है जो नवीन कार्य करना होय सो पिता गुरु स्वामी कूँ जनाय करि करै आज्ञा मांगि करै

तथा आज्ञा को अवसर नाहीं मिलै तो अवसर देखि शीघ्र ही जनावै यो ही विनय है। या ही भक्ति है जाका मस्तक ऊपरि गुरु विराजें ते धन्य भाग हैं विनयवंत मद रहित पुरुष हैं ते समस्त कार्य गुरुनि को जनाय दे हैं। धन्य हैं जे इस कलिकाल में मद-रहित कोमल परिणाम करि समस्त लोक में प्रवर्तों हैं। उत्तम पुरुष हैं ते वालक में, वृद्ध में, निर्धन में, रोगीन में, बुद्धिरहित मूर्खनि में तथा जात तथा जात कुलादिहीन में हूं यथा योग्य प्रिय वचन आदर सत्कार स्थानदान कदाचित नाहीं चूकें हैं प्रिय वचन ही कहैं उत्तम पुरुष उद्धतता का वस्त्र आभरण नाहीं पहरैं उद्धत पणा का परके अपमान का कारण देन लेन विवाहादि व्यवहार कार्य नाहीं करें हैं उद्धत होय अभिमानी पना का चालना वैठना झांकना वोलना दूर ही तैं छांड़े ताकैं लोक में पूज्य मार्दव गुण होय है। धन पावना, रूप पावना, ज्ञान पावना, विद्याकला चतुराई पावना, ऐश्वर्य पावना, वल पावना, जात कुलादि उत्तम गुण जगन्मान्यता पावना जिनका सफल है जो उद्धतता रहित अभिमान रहित नम्रता सहित विनय सहित प्रवर्त्तें हैं। अपने मन में आप कूँ सबतैं लघुमानता कर्म-परवस जानें हैं सो कैसें गर्व करै? नाहीं करै हैं। भव्यजन हो सम्यग्दर्शन को अंग इस मार्दव अंग कूँ जाणि चित्त के विषै ध्यान करो ऐसें मार्दव धर्म को वर्णन कीयौ ॥ २ ॥

अब आर्जव धर्म कूं वर्णन करै हैं—

धर्म का श्रेष्ठ लक्षण आर्जव है। आर्जव नाम सरलता का है। मन वचन काय की कुटिलता को अभाव सो आर्जव है। आर्जव

धर्म है सो पाप का खंडन करने वाला है अर सुख उपजावने वाला है—तातैं कुटिलता छांड़ि कर्म का क्षय करने वाला आर्जव धर्म धारण करो—कुटिलता है सो अशुभ कर्म का बन्ध करने वाला है। जगत में अति निन्द्य है, यातैं आत्मा का हित का इच्छकनि कूँ आर्जव धर्म का अवलम्बन करना उचित है। जैसा आपके चित्त में चिन्तवन करिये तैसा ही अन्य कूँ कहना और तैसा ही वाह्य काय करि प्रवर्त्तन करिये सो सुख का संचय करने वाला आर्जव धर्म कहिये हैं। मायाचार रूप शल्य मन तैं निकालो। उज्ज्वल पवित्र आर्जव धर्म का विचार करो। मायाचारी का व्रत तप संयम समस्त निरर्थक है। आर्जव धर्म है, सो दर्शनज्ञानचारित्र को अखंड स्वरूप है। अर अतीन्द्रिय सुख का पिटारा है। आर्जव धर्म का प्रभाव करि अतीन्द्रिय का अविनाशी सुख कूँ प्राप्त होय है। जैसे कांजी तें दुग्ध फटि जाय है अर मायाचारी अपना कपट कूँ वहुत छिपावते हू प्रगट हुयां विना नाहीं रहै है। पर जीवनि की चुगली करै वा दोष प्रकाशै तें आप ही प्रगट हो जाय है। मायाचार करना है सो अपनी प्रतीति का विगाड़ना है धर्म का विगड़ना है मायाचारी का समस्त हित विना किये वैरी होय हैं। जो व्रती होय त्यागी तपस्वी होय ,अर जाका कपट एक वार किया हू प्रकट हो जाय ताकूँ समस्त लोक अधर्मी मान कोऊ प्रतीति नाहीं करै है। कपटी की माता हू प्रतीति नाहीं करै है। कपटी तो मित्र द्रोही, स्वामिद्रोही, धर्म द्रोही, कृतघ्नी है अर यो जिनेन्द्र को धर्म तो कपट रहित छल रहित है, जैसे

वांका म्यान में सूधौ खड्ग प्रवेश नाहीं कर सकै है। कपटी का दोऊ लोक नष्ट हो जाय है। यातैं जो यश चाहो हो धर्म चाहो हो प्रतीति चाहो हो तो मायाचार का त्याग करि आर्जव धर्म धारण करो। कपट रहित की वैरी हू प्रशंसा करै है। कपट रहित सरल चित्त जो अपराध भी किया होय तो दंड देने योग्य नाहीं होय है। आरज धर्म का धारक तो परमात्मा का अनुभवन मैं संकल्प करै है, कपाय जीतने का संतोप धारने का संकल्प करै है। जगत के छलनिका दूर ही तैं परिहार करै है आत्मा कूं असहाय चैतन्य मात्र जानै है जो धन संपदा कुटुम्बादि कूँ अपनावै, सो ही कपट छल करि ठिगाई करै तातैं जो आत्मा कूँ संसार परिभ्रमण तैं छुटाय पर द्रव्यनि तैं आप कूं भिन्न असहाय जानै सो धन जीवितव्य के अर्थि कपट कदाचित नाहीं करै। तातैं जो आत्मा कूँ संसार परिभ्रमण तैं छुटाया चाहो हो तो मायाचार का परिहार करि आर्जव धर्म धारण करो। ऐसे आर्जव धर्म का वर्णन किया ॥ ३ ॥

॥ अब सत्य धर्म का वर्णन करैं हैं ॥

जो सत्य वचन है सो ही धर्म है यो सत्य वचन दया धर्म को अब मूल कारण है, अनेक दोपनि का निराकारण करने वाला है इस भव मैं तथा परभव मैं सुख का करने वाला है समस्त के विश्वास करने का कारण हैं समस्त धर्म के मध्य सत्य वचन प्रधान है सत्य है सो संसार समुद्र के पार उतारने कूं जहाज है समस्त विधाननि में सत्य है सो वड़ा विधान है। समस्त सुख का

कारण सत्य ही है। सत्य तैं ही मनुष्य जन्म भूषित होय है। सत्य कर कै समस्त पुण्य कर्म उज्ज्वल होय है। जे पुण्य के ऊंचे कार्य करिये हैं तिनकी उज्ज्वलता सत्य विना नाहीं होय है। सत्य करि समस्त गुणनिका समूह महिमा कूँ प्राप्त होय है। सत्य का प्रभाव करि देव हैं ते सेवा करें हैं। सत्य कर कैं ही अणुव्रत महाव्रत होय हैं। सत्य विना व्रत संजम नष्ट हो जाय है। सत्य करि समस्त आपदा को नाश होय है, यातैं जो वचन वोलो सो अपना परका हित रूप कहो प्रमाणीक कहो कोऊ कै दुःख उपजै ऐसा वचन मति कहो पर जीवन कैं वाधा कारी सत्य हू मति कहो गर्व रहित कहो परमात्मा का अस्तित्व कहने वाला वचन कहो नास्तिकनि कें वचन पाप पुण्य का स्वर्ग नरक का अभाव कहने वाला वचन मति कहो। यहां ऐसा परमागम का उपदेश जानना। यो जीव अनंतानंत काल तो निगोद मैं ही रह्या तहां वचन रूप कर्म वर्गणा ही ग्रहण नाहीं करी क्योंकि पृथ्वी काय अपकाय तेजकाय वायुकाय वनस्पतिकाय इनके मध्य अनंतकाल असंख्यात काल रह्यो तहां तो जिह्वा इन्द्रिय ही नाहीं पाई वोलने की शक्ति ही नाहीं पाई अर जो विकल चतुष्क मैं उपज्या तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचन मैं उपज्या तहां जिह्वा इन्द्रिय पाई तो हू अक्षर स्वरूप शब्द उच्चारण करने का सामर्थ्य नाहीं भया एक मनुष्यपनामें वचन वोलने की शक्ति प्रगट होय है। ऐसा दुर्लभ वचन कूँ असत्य वोलि विगाड़ि दैना सो वड़ा है। अनर्थ मनुष्य जन्म की महिमा तो एक वचन ही तैं है नेत्र कर्ण जिह्वा नाशि का तो ढोर तिर्यंच कें हू होय है। खावना पीवना काम भोगादिक पुण्य पाप

के अनुकूल ढोरनि कूँ हू प्राप्त होय है। आवरण वस्त्रादिक कूकरा वानरा गधा घोड़ा ऊंट वलध इत्यादिकनि कुँ हू मिलै है। परंतु वचन कहने की शक्ति श्रवण करने की शक्ति तथा उत्तर देने की शक्ति तथा पढ़ने पढ़ावने· कारण वचन तो मनुष्य जन्म मैं ही है अर मनुष्य जन्म पाय भी जो वचन विगाड़ि दिया सो समस्त जन्म विगाड़ि दिया। वहुरि मनुष्य जन्म मैं जो लैना दैना कहना सुनना धीज प्रतीधर्म कर्म प्रीत वैर इत्यादिक जे प्रवृति रूप अर निवृत्ति रूप कार्य हैं ते वचन के आधीन हैं अर वचन कूँ ही दूषित कर दिया तदि समस्त मनुष्यजन्मका व्यवहार विगाड़दूषित कर दिया। तातैं प्राण जाते हू अपना वचन कूँ दूषित मति करो। वहुरि परमागम में कह्या जोच्यार प्रकारका असत्य वचन ताका त्याग करो। जो विद्यमान अर्थ का निषेध करना सो प्रथम असत्य है जैसे कर्म भूमि का मनुष्य तिर्यंच का अकाल मृत्यु नाहीं होय ऐसा वचन असत्य है जातै देव नारकी तथा भोग भूमि का मनुष्यतिर्यंच का तो आयुकी स्थिति पूर्ण भयां ही मरण है वीच आयु नाहीं छिदै है। जितनी स्थिति वांधी तितनी भोग कर कै ही मरण करै हैं। अर कर्म भूमि का मनुष्य तिर्यंचनिका आयु है। सो विष का भक्षण करि तथा ताड़न मारण छेदन वंदनादिक वेदना करि तथा रोग की तीव्र वेदना करि तथा देहतैं रुधिर का नाश होने करि तथा दुष्ट मनुष्य दुष्ट तिर्यंच भयंकर देव करि उपज्या भय करि तथा वज्रपातादिक स्वचक्र पर चक्रादिक के भय करि तथा शस्त्र का घात करि तथा पर्वतादिक तैं पतन करि तथा अग्नि पवन जल कलह विसंवादादिक तैं उपज्या क्लेश करि तथा

सास उस्वास का धूमादिक तैं रुकने करि तथा आहार पानादिका निरोध करि आयु का नाश होय है, आयु की दीर्घ स्थिति हू विष भक्षण रक्त क्षय भय शास्त्र घात संक्लेश सासोस्वास निरोध करि अन्न पान का अभाव करि तत्काल नाश कूं प्राप्त होय ही है। केते लोग कहैं हैं आयु पूरी हुआ बिना मरण नाहीं होय ताका उत्तर करैं हैं। जो वाह्य निमित्तसूँ आयु नाहीं छिदै तो विष भक्षण तैं कोन परान्मुख होता अर विष खाने वाले कूँ उकाली काहे कूं देते अर शस्त्र घात करने वाले तैं काहे कूं भय करि भागते अर सर्प सिंह व्याघ्र हस्ती तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंचादिकनि कूं दूरि ही तैं काहे कूं छांड़ते। अर नदी समुद्र कूप वावड़ी में तथा अग्नि की ज्वाला में पड़ने तें कौन भय करता अर रोग का इलाज काहे कूं करते तातैं वहुत कहने करि कहा जो आयु घात होने का वहिरंग कारण मिल जाय तो आयु का घात होय ही जाय यह निश्चय है। वहुरि आयु कर्म की ज्यौं अन्यहू कर्म वहिरङ्ग कारण मिलै उदय आवैं ही हैं समस्त जीवन के पाप कर्म पुण्य कर्म सत्ता मैं विद्यमान हैं वाह्य द्रव्य क्षेत्र-काल भावादि परिपूर्ण सामग्री मिलै कर्म अपना रस देवै ही है वाह्य निमित्त नाहीं मिलै तो उदय में नाहीं आवै तथा रस दियां विना ही निर्जरै है। वहुरि जो असद्भूत कूं प्रकट करना सो दूजा असत्य है जैसें देवनिकें अकाल मृत्यु कहना देवनि कूं भोजन ग्रासादिरूप करना कहे वा देवनिकूं मांस भक्षी कहना तथा मनुष्यनी कै देव करि काम सेवन तथा देवाङ्गना तैं मनुष्य का काम सेवन इत्यादिक कहना दूजा असत्य है। वहुरि वस्तु का

स्वरूप कूं अन्य विपरीत स्वरूप कहना सो तीसरा असत्य है। बहुरि गर्हित वचन कहना सो चौथा असत्य वचन है। गर्हित वचन का तीन भेद है। गर्हित, सावद्य, अप्रिय। तिनमें पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमञ्जस, प्रलपित, इत्यादिक अन्य हू सूत्र विरुद्ध वचन सो गर्हित वचन हैं। तिनमें जो पर के विद्यमान तथा अविद्यमान दोषनि कूं पूठ पाछैं कहना तथा पर का धन का विनाश, जीविका का विनाश, प्राणनि का नाश जिस वचन तैं हो जाय तथा जगत में निंद्य हो जाय अपवाद हो जाय। ऐसा वचन कहना सो गर्हित नाम असत्य वचन है। बहुरि हास्य लीयां भंड वचन तथा श्रवण करने वालेनि कै अशुभ राग उपजावने वाले वचन सो हास्य नामा गर्हित वचन है। बहुरि अन्य कूं कहै तू ढांढा है तू मूर्ख है, अज्ञानी है इत्यादिक कर्कश वचन है। बहुरि देश काल के योग्य नाहीं जातैं आपके अन्य कै महा सन्ताप उपजै सो असमञ्जस वचन है। बहुरि प्रयोजन रहित धीठपना तैं बकवाद करना सो प्रलपित वचन है। बहुरि जिस वचन करि प्राणीनका घात हो जाय देश में उपद्रव हो जाय लुटि जाय तथा देश का स्वामीनि कै महा वैर हो जाय तथा ग्राम में अग्नि लग जाय, घर बल जाय, वन में अग्नि लग जाय तथा कलह विसंवाद युद्ध प्रकट हो जाय तथा विषादि करि मरि जाय तथा मारि जाय, वैर बंध जाय तथा छह काय के जीवन के घात का आरम्भ हो जाय महा हिंसा में प्रवृत्ति हो जाय सो सावद्य वचन है। तथा पर कूं चोर कहना व्यभिचारी कहना सो समस्त सावद्य वचन है दुर्गति के कारण त्यागने योग्य है। अर अप्रिय वचन त्यागने

योग्य हैं। प्राण जात हू नाहीं कहना अप्रिय वचन के भेद ऐसे जानने—कर्कशा, कटुका, परषा, निष्ठुरा, परकोपनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अभयङ्करी, छेदकरी, भूत वधकरी ये महा पाप के करने वाली महा निंद्य दश भाषा सत्यवादी त्याग करें हैं। तू मूरख है, बलद है, ढोर है रे मूर्ख ! तू कहा समझै इत्यादिक कर्कशा भाषा है। बहुरि तू कुजाति है, नीच जाति है, अधर्मी महा-पापी है तू स्पर्शन करने योग्य नाहीं तेरा मुख देख्यां महा अनर्थ है इत्यादिक उद्वेग करने वाली कटुका भाषा है। तू आचार भ्रष्ट है। भ्रष्टाचारी है, महा दुष्ट है इत्यादिक मर्म छेदनी वाली परुषा भाषा है। ताकूं मारि नाखिस्यूं थारो नाक काटिस्यूं थारे दाह लगास्यूं थारौ मस्तक काटिस्यूं तनै खाय जास्यूं इत्यादिक निष्ठुरा भाषा है। रे निर्लज्ज वर्ण शङ्कर तेरा जाति कुल आचार का ठिकाना नाहीं, तेरा कहा तप, तू कुशील है, तू हँसने योग्य है, महानिंद्य है, अभक्ष्य भक्षण करने वाला है। तेरा नाम लीयां कुल लज्जित होय है इत्यादिक परकोपनी भाषा है। बहुरि जिस वचन के सुनते ही हाड़नि की शक्ति नष्ट हो जाय, सामर्थ्य नष्ट हो जाय सो मध्यकृशा भाषा है। बहुरि लोकनि में अपना गुण प्रगट करना परके दोष कहना अपना जाति कुल रूप बल विज्ञानादिक मद लिये जो वचन बोलना सो अभिमामिनी भाषा है। बहुरि शील खण्डन करने वाली और विद्वेष करने वाली अनयङ्करी भाषा है। बहुरि जो वीर्य शील गुणादिकनि के निर्मूल करने वाली असत्य दोष प्रकट करने वाली जगत में झूठा कलङ्क प्रकट करने वाली छेदङ्करी भाषा है। जिस वचन करि अशुभ वेदना

प्रकट हो जाय वा प्राणनि का नाश करने वाली भूत वधकरी भाषा है। यह दश प्रकार निंद्य वचन त्यागने योग्य हैं। वहुरि स्त्रीन के हाव भाव, विलास, विभ्रम रूप क्रीड़ा, व्यभिचारादिकन की कथा काम के जगाने वाली, ब्रह्मचर्य का नाश करने वाली स्त्रीन की कथा तथा भोजन पान में राग कराने वाली भोजन की कथा तथा रौद्र कर्म करने वाली राज कथा चोरनिकी कथा तथा मिथ्या दृष्टी कुलिङ्गीनि की कथा तथा धन उपार्जन करने की कथा तथा वैरी दुष्टनि के तिरस्कार करने की कथा तथा हिंसा कूं पुष्ट करने वाली वेद स्मृति पुराणादिक कुशास्त्रनि की कथा कहने योग्य नाहीं श्रवण करने योग्य नाहीं। पापकौ आश्रव को कारण अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है। भो ज्ञानी हो ये चार प्रकार की निंद्य भाषा हास्य करि क्रोध करि लोभ करि मद करि भय करि द्वेष करि कदाचित मति कहो अपना पर का हित रूप ही वचन बोलो। इस जीव कै जैसा सुख हित रूप अर्थ संयुक्त मिष्ट वचन करै है। निराकुल करै है आताप हरै है तैसा सुखकारी आताप हरने वाला चन्द्रकांतिमणि जल चन्दन मुक्ताफलादिक कोऊ पदार्थ नाहीं हैं अर जहाँ अपने बोलने तैं धर्म की रक्षा होती होय प्राणीनिका उपकार होता होय तहाँ विना पूछै हू बोलना अर जहाँ आपका अन्य का हित नाहीं होय तहाँ मौन सहित ही रहना उचित है। बहुरि सत्य वचन तैं सकल विद्या सिद्ध होय है। जहाँ विद्या देने वाला सत्य वादी होय अर सीखने वाला हू सत्य-वादी होय ताकें सकल विद्या सिद्ध होय कर्म की निर्जरा होय। सत्य का प्रभाव तैं अग्नि, जल, विष, सिंह, सर्प, दुष्ट, देव, मनु-

ष्यादिक बाधा नाहीं कर सकैं हैं। सत्य का प्रभाव तैं देवता वशीभूत होय हैं प्रीति प्रतीति दृढ़ होय है सत्यवादी माता समान विश्वास करने योग्य होय है। गुरू की ज्यों पूज्य होय है मित्र ज्यों प्रिय होय है उज्ज्वल यश कूं प्राप्त होय है तप संयमादि समस्त सत्य वचन तै सोहैं हैं। जैसे विष मिलने करि मिष्ट भोजन का नाश होय अन्याय करि धर्म का यश का नाश होय तैसें असत्य वचन तैं अहिंसादि सकल गुणनि का नाश होय है तथा असत्य वचन तैं अप्रतीति अकीर्ति अपवाद अपने वा अन्य के संक्लेश, अरति, कलह वैर, शोक, वध, बन्धन, मरण, जिह्वाछेदन, सर्वस्व-हरण बन्दीग्रह में प्रवेश दुर्ध्यान, अपमृत्यु, व्रत, तप, संयम का नाश नरकादि दुर्गति में गमन भगवान् की आज्ञा को भङ्ग परमा-गम तैं परापरान्मुखता घोर पापका आश्रव इत्यादि हजारां दोष प्रकट होंय हैं। यातैं हो ज्ञानीजन ही लोक में प्रिय हित मधुर वचन बहुत भरया है। सुन्दर शब्दिनि की कमी नाहीं! फिर निंद्य वचन क्यों बोलो हो? रे तू इत्यादिक नीच पुरुपनि के बोलने के वचन प्राण जाते हू मति कहौ अधमपना अर उत्तमपना तो वचन ही तैं जनाया जाय है। नीचनि के बोलने के निंद्य वचन कूं छांड़ि प्रिय हित मधुर पथ्य धर्म सहित वचन कहो जे अन्य कूं दुःख का दैने वाला वचन कहैं है तथा झूठा कलङ्क लगावे हैं तिनकैं पाप तैं इहांहि बुद्धि भ्रष्ट होय है जिह्वा गलि जाय है तालवा गलि जाय आंधा हो जाय पग नष्ट हो जाय दुर्ध्यान तैं मरि नरक तिर्यंचादि कुगति का पात्र होय है अर सत्य का प्रभाव तैं इहां उज्ज्वल यश वचन की सिद्धि द्वाद-

शांगादि श्रुत का ज्ञान पाय फिर इन्द्रादिक महर्द्धिक देव होय तीर्थंकरादि उत्तम पद पाय निर्वाण जाय है यातैं उत्तम सत्य धर्म कूं धारण करो ऐसें सत्य नामा धर्म का वर्णन किया ॥ ४ ॥

अब शौचधर्म का स्वरूप वर्णन करिये हैं । (५)

शौच नाम पवित्रता का—उज्ज्वलता का है। जो वहिरात्मा देह की उज्ज्वलता स्नानादिक करने कूँ शौच कहैं हैं। सो सप्त धातुमय को मल-मूत्र को भरो जलतैं धोया शुचिपना कूं प्राप्त नहीं होय है। जैसे मल का वनाया घट मल का भरया जलतें शुद्ध नाहीं होय। तैसैं शरीर हू उज्ज्वल जलतैं शुद्ध नाहीं होय, शुचि मानना वृथा है। वहुरि शौच-धर्म तौ आत्मा कूं उज्ज्वल किये होय। आत्मा लोभ करि, हिंसा करि अत्यन्त मलिन होय रह्या है सो आत्मा कै लोभ-मल का अभाव भये शुचिता होय है। जो अपने आत्मा कूं देह तैं भिन्न ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग मय अखण्ड अविनाशी-जन्म जरा, मरण रहित तीन लोकवर्त्ती समस्त पदार्थनि का प्रकाशक सदा काल अनुभव करै है, ध्यावै है, ताकैं शौच-धर्म होय है। वहुरि मनकूं मायाचार लोभादिक रहित उज्ज्वल करना ताकें शोच-धर्म होय है। जाका मन, काम, लोभादिक करि मलीन होय ताकें शौच-धर्म नाहीं होय है। धन की गृद्धिता जो अति लम्पटता ताका त्याग तैं शौच-धर्म होय है। वहुरि परिग्रह की ममता कूं छांड़ि इन्द्रियन का विपियनि को त्याग करि तपश्चरण का मार्ग में प्रवर्तन करना सो शौच-धर्म है। वहुरि ब्रह्मचर्य धारण करना सो शौच-धर्म है। वहुरि अष्ट-मद

करि रहित विनय वान पना सो शौच-धर्म है। अभिमानी मद सहित होय सो महामलीन है ताकें शौच-धर्म कैसें होय। बहुरि वीतराग सर्वज्ञ का परमागमका अनुभव करने करि अन्तर्गत, मिथ्यात्व कपायदिक मल का धोवना सो शौच-धर्म है। उत्तम गुणनि की अनुमोदना करि शौच-धर्म होय है। परिणामनि में उत्तम पुरुपनि का गुणनि का चिंतवन करि आत्मा उज्ज्वल होय है। कपाय-मल का अभाव करि उत्तम शौच-धर्म होय है। आत्मा कूं पाप करि लिप्त नहीं होने दैना सो शौच-धर्म है। जो सम-भाव संतोप भावरूप जल करि तीव्र लोभरूप मल का पुञ्ज कूं धोवै है। अर भोजन में अति लंपटता रहित है ताकै निर्मल शौच धर्म होय है। जातैं भोजन का लंपटी अति अधम है पर अखाद्य वस्तु कूं भी खाय है, हीनाचारी होय है, भोजन का लम्पटी कै लज्जा नष्ट हो जाय है। जातैं संसार में जिह्वा, इंद्रिय पर उपस्थ इन्द्रिय के वशीभूत भये जीव आपा भूलि नरक के तिर्यंचगति के कारण महानिन्द्य परिणाम कूं मलीन करने वाली है। इनकी वांछातैं रहित होय, अपने आत्मा कूं संसार-पतन तैं रक्षा करो। आत्मा की मलीनता जो जीव हिंसा तैं अरु पर-धन, पर-स्त्री की वांछातैं है जे पर-स्त्री पर-धनका इच्छक अर जीव-घात के करने वाले हैं ते कोटि तीर्थन में स्नान करो समस्त तीर्थन की वन्दना करो तथा कोटि दान करो, कोटि वर्ष तप करो समस्त शास्त्रनि का पठन-पाठन करो तौहू उनकें शुद्धता कदाचित नाहीं होय। अभक्ष-भक्षण करने वालेनिका अर अन्याय का विषय तथा धन के भोगने वालेनिकका परिणाम ऐसे मलीन होय हैं। जो कोटि वार

धर्म का उपदेश अर समस्त सिद्धांतनि की शिक्षा बहुत वर्ष श्रवण करते हू कदाचित हृदय में प्रवेश नाहीं करें है सो देखिये है जिनकूं पचास वरस शास्त्र श्रवण करते भये हैं। तोहू धर्म का स्वरूप का ज्ञान जिनकूं नाहीं है, सो समस्त अन्याय धन अर अभक्ष भक्षण का फल है। तातें जो अपना आत्मा का शौच चाहो हो तो अन्याय का धन मति ग्रहण करो, अर अभक्ष्य भक्षण मति करो, पर की स्त्री की अभिलाषा मति करो, बहुरि परमात्मा के ध्यानतैं शौच है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्यागतैं शौच-धर्म है। जे पञ्च पापनि में प्रवर्तन वाले हैं, ते सदा काल मलीन हैं। जे पर के उपकार कूं लोपे हैं ते कृतघ्नी सदा मलीन हैं। जे गुरु-द्रोही, धर्म-द्रोही, स्वामि-द्रोही, मित्र-द्रोही उपकार कूं लोपने वाले हैं, तिनके पाप का संतान असंख्यात भवनि में कोटि तीर्थनि में स्नान करि दान करि दूर नाहीं होय है। विश्वासघाती सदा मलीन है। यातैं भगवान् के परमागम की आज्ञा प्रमाण, शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र करि आत्मा को शुचि करो। क्रोधादि कषाय का निग्रह करि उत्तम क्षमादि गुण धारण करि उज्ज्वल करो। समस्त व्यवहार कपट रहित उज्ज्वल करो, पर का विभव ऐश्वर्य उज्वलयश उत्तम विद्यादिक प्रभाव देखि अदेखस का भावरूप मलीनता छांडि शौच-धर्म अंगीकार करो। पर का पुण्य का उदय देखि विषादी मति होहू। इस मनुष्यपर्याय का तथा इन्द्रिय ज्ञान वल आयु संपदादिकनिकूं अनित्य क्षण भंगुर जानि एकाग्र चित्त करि अपने स्वरूप में दृष्टि धारि अशुभ-भावनि का अभाव करि

आत्माकूं शुचि करो। शौचि ही मोक्ष का मार्ग है। शौच ही मोक्ष का दाता है। ऐसे शौच नाम पञ्चम धर्म को वर्णन कियो ॥ ५ ॥

अब संयम नाम धर्म का स्वरूप कहिये हैं । ६॥

संयम का ऐसा लक्षण जानना जो अहिंसा कहिये हिंसा को त्याग दया रूप रहना हितमित पथ्य प्रिय सत्य वचन बोलना परके धन में वांछा का अभाव करना कुशील का छोड़ना परिग्रह त्यागना ए पांच वृत हैं। तिनमें पंच पापनि का एक देश त्याग सो अणुव्रत है। सकल त्याग सो महाव्रत है। इन पंच व्रतनि कूं दृढ़ धारण करना अर पंच समिति का पालना तिनमें गमन की शुद्धता ईर्या समिति है। वचन की शुद्धिता सो भाषा समिति है। निर्दोष शुद्ध भोजन करना सो ऐषणा समिति है। शरीर के उपकारादिक नेत्रनि तैं देखि सोधि उठावना धरना सो आदाननिक्षेपणां समिति है। मलमूत्र कफादिक मलनिकूं अन्य जीवन कैं ग्लानि दुःख वाधादिक नाहीं उपजै ऐसे क्षेत्र में क्षेपना सो प्रतिष्ठापना समिति है। इन पंच समिति का पालना अर क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनि का निग्रह करना अर मन वचन काय की अशुभ प्रवृति ए दण्ड हैं। इन तीन दण्डनि का त्याग करना अर विषयनि में दौड़ती पंच इन्द्रियन कूं वश करना, जीतना सो संयम है। भावार्थ—पंच व्रतनि का धारण पंच समिति का पालन कषायनि का निग्रह दण्डनि का त्याग इन्द्रियनि का विजय कूं जिनेन्द्र के परमागम में, संयम कह्या है। सो संयम

बहुत दुर्लभ है, जिनके पूर्व के बांधे अशुभ कर्मनि का अति मन्द-पना होते मनुष्य जन्म उत्तम देश, उत्तम कुल, उत्तम जाति इन्द्रिय परिपूर्णता नीरोगता कषायनि की मन्दता होय अर उत्तम संगति अर जिनेन्द्र का आगमनि का सेवन अर सांचे गुरुनि का संयोग सम्यग्दर्शनादि अनेक दुर्लभ सामिग्री का संयोग होय तदि संसार देह भोगनि तैं अति विरक्तता के धारक मनुष्य कै अप्रत्याख्याना वरण का क्षयोपशम तैं तो देश संयम होय अर जाके अप्रत्याख्यान अर प्रत्याख्यान दोऊ कषायनि का क्षयोपशम होय ताकैं सकल संयम होय है, तातैं संयम पावना महादुर्लभ है। नरक गति मैं तिर्यंचगति में देवगति में तो संयम होय नाहीं कोऊ तिर्यंच कै देशव्रत अपनी पर्याय माफिक कदाचित होय है अर मनुष्य पर्याय में भी नीच कुलादिक में अधदेशनि में इन्द्रिय विकल अज्ञानी रोगी दरिद्री अन्याय मार्गी विषयानुरागी तीव्र कषायी निंद्यकर्मी मिथ्या दृष्टीनि कै संयम कदाचित नाहीं होय है तातैं अति दुर्लभ संयम का पावना है। ऐसे दुर्लभ सम्यक कूं हू पाय कोऊ मूढ़ बुद्धी विषयनि का लोलुपी होय छांड़ै है, तो अनन्त काल जन्म मरण करता संसार में परिभ्रमण करै है, संयम पाय छांड़ै है संयम कूं बिगाड़ै है। ताके अनन्तकाल निगोद में परिभ्रमण त्रसस्था वरनि में भ्रमण करना होय सुगति नाहीं होय संयमपाय बिगाड़ै ने समान अन्य अनर्थ नाहीं है। विषयनि का लोभी होय करि जो संयम कूं बिगाड़ै है सो एक कौड़ी में चिन्तामणि रत्न वेचे है तथा ईंधन के अर्थ कल्पवृक्ष छेदै है। विषयनिका सुख है सो सुख नाहीं सुखाभास है। क्षण भङ्गुर है नरकनि के घोर दुःखनि का

कारण है। किंपाकफल जैसे जिह्वा स्पर्शमात्र मिष्ट लागै है। पाछै घोर दुःख महादाह संताप देय मरण कूं प्राप्त करै है, तातें भोग किंचिन्मात्र काल तो अज्ञानी जीवन कूं भ्रमतें सुखसाभासै है फिर अनन्तकाल अनन्त भवनि में घोर दुःख का भोगना है। यातें संयम की परम रक्षा करो, पांच इन्द्रियनि कूं विषयनि के सम्बन्ध तैं रोकने तें संयम होय है। कषायनि का खण्डनिकरि संयम होय है। दुर्धर तप का धारण करि संयम होय है रसनि का त्याग करि संयम होय है, मन के प्रसर के रोकने करि संयम होय है। महान् काय क्लेशनि के सहने करि संयम होय है। उपवासादिक अनशन तप करि संयम होय है। मन में परिग्रह की लालसा का त्याग करि संयम होय है। त्रस स्थावर जीवनि की रक्षा करना सो ही संयम है। मन के विकल्पनि के रोकने करि तथा प्रमाद तें वचन की प्रवृत्ति रोकने करि संयम होय है। शरीर के अङ्ग उपांगनि का प्रवर्त्तन कूं रोकने करि संयम होय है। बहुत गमन के रोकने करि संयम होय है। बहुरि दया रूप परिणाम करि संयम होय है। परमार्थ का विचार करकें तथा परमात्मा का ध्यान करकें संयम होय है। संयम करकैं ही सम्यग्दर्शन पुष्ट होय संयम ही मोक्ष का मार्ग है। संयम विना मनुष्य भव शून्य है। गुण रहित है, संयम विना यो जीव दुर्गतिनि कूं प्राप्त भया। संयम विना देह का धारना बुद्धि का पावना ज्ञान का आराधन करना समस्त वृथा है। संयम विना दीक्षा धारना व्रत धारना मुन्ड मुडावना नग्न रहना भेष धारणा ये समस्त वृथा है। जातैं संयम दोय प्रकार है। इन्द्रिय संयम अर प्राण संयम जाकी इन्द्रियाँ

विषयनि तैं नाहीं रुकीं अर जाके छह काय के जीवनि की विराधना नाहीं टली ताकें बाह्य परीसह सहना तपश्चरण करना दीक्षा लेना वृथा है, संसार में दुःखित जीवनि कूं संयम बिना कोऊ अन्य शरण नाहीं हैं। ज्ञानी जन तौ ऐसी भावना भावें हैं जो संयम बिना मनुष्य जन्म की एक घटिका हू मति जावो। संयम विना आयु निष्फल है। यो संयम है सो इस भव में अर पर भव में शरण है, दुर्गति रूप सरोवर के सोषण करने कूं सूर्य है। संयम करकैं ही संसार रूप विषम वैरी का नाश होय। संसार परिभ्रमण का नाश संयम बिना नाहीं होय ऐसा नियम है अर जो अन्तरङ्ग में तो कषायन करि आत्मा कूं मलीन नाहीं होने दे है अर बाह्य यत्नाचारी हुआ प्रमाद रहित प्रवर्त्ते है ताकें संयम होय है। ऐसें संयम धर्म का वर्णन किया ॥ ६ ॥

अब तप धर्म का वर्णन करें हैं ॥७॥

इच्छा का निरोध करना सो तप है। तप च्यार आराधनादि में प्रधान है। जैसें सुवर्ण कूं तपावने करि सोलाताव लगैं समस्त मल छांड़ि करकैं शुद्ध होय है, तैसें आत्मा हू द्वादश प्रकार तप के प्रभाव कर कर्म मल रहित शुद्ध होय है। अज्ञानी मिथ्या दृष्टि तो देह कूं पंच अग्नि करि तपावें हैं तथा अनेक प्रकार काय के क्लेश कूं तप कहैं हैं। सो तप नाहीं है। काय कूं दग्ध किये अर मार लिये कहा होय। मिथ्या दृष्टी ज्ञान पूर्वक आत्मा कूं कर्म बन्धतैं छुड़ावना नाहीं जानें हैं। कर्म मल कलङ्क रहित आत्मा तो भेद विज्ञान पूर्वक अपने आत्मा का स्वभाव कूं अर राग दोष

मोहादि रूप भाव कर्म रूप मैल कूं भिन्न देखै है। जैसें राग द्वेष मोह रूप मल भिन्न हो जाय अर शुद्ध ज्ञान दर्शनमय आत्मा भिन्न हो जाय सो तप है, याही तें कहैं हैं। मनुष्य भव पाय जो स्वपर तत्त्व कूं जाराया है तो मन सहित पंच इन्द्रियनि कूं रोकि विषयनि तें विरक्त होय समस्त परिग्रह कूं छांड़ि वन्ध का करने वाली राग-द्वेष मई प्रवृत्ति कूं छांड़ि पाप का आलंवनि छूटने के अर्थ ममता नष्ट करिवे कूं वन में जाय तप करिये। ऐसा तप धन्य पुरुषनि कै होय है। संसारी जीव कैं ममता रूप वड़ी फांसी है सो ममता रूप जाल में फँसा हुआ घोर कर्म कूं करता महा पाप का वन्ध करि रोगादिक की तीव्र वेदना अर स्त्री-पुत्रादि समस्त कुटुम्ब का तथा परिग्रह का वियोगादिक तैं उपज्या तीव्र आर्तध्यान तैं मरण पाय दुर्गतिनि के घोर दुःखनि कूं जाय प्राप्त होंय है। तपोवन कूं प्राप्त होना दुर्लभ है तप तो कोऊ महाभाग्य पुरुष पापनि तैं विरक्त होय समस्त स्त्री-पुत्र धनादिक परिग्रह तैं ममत्व छांड़ि परम धर्म के धारक वीतराग निर्ग्रंथ गुरुनि का चरणनि का शरण पावै है अर गुरुनि को पाय करि जाके अशुभ कर्म का उदय अतिमन्द होय सम्यक्त्व रूप सूर्य का उदय प्रकट होय संसार विषय भोगनि तैं विरक्तता जाकैं उपजी होय सो तप संयम ग्रहण करै हैं अर जो ऐसा दुर्द्धर तप कूं धारण करके हू कोऊ पापी विषयनि की वांछा करि विगाड़ै है ताके अनन्तानन्त काल में फिर तप नाहीं प्राप्त होय है यातैं मनुष्य भव पाय तत्वनि का स्वरूप जानि मन सहित पंच इन्द्रियनि कूं रोकि वैराग्य रूप होय समस्त

संग कूं छाँड़ि वन में एका की ध्यान में लीन हुआ तिष्टै सो तप है। जहाँ परिग्रह में ममता नष्ट होय वांछा रहित तिष्टना तथा प्रचण्ड कामना का खण्डन करना सो बड़ा तप है। जहां नग्न दिगम्बर रूप धारि शीत की, पवन की, आताप की, वर्षा की तथा डांस, माछर, मछिका, मधु मछिका, सर्प, विछू इत्यादिक तैं उपजी घोर वेदना कूं कोरे अङ्ग परि सहना सो तप है। अर जो निरजन पर्वतनि की निर्जन गुफानि में भयङ्कर पर्वतनि के दराड़ेनि में तथा सिंह, व्याघ्र, रीछ, स्याली चीता हस्तीन करि व्याप्त घोर बन में निवास करना सो तप है। तथा दुष्ट, वैरी, म्लेच्छ, चोर, शिकारी, मनुष्य अर दुढ़ व्यन्तरादिक देवनीकृत घोर उपसर्गनि तैं कम्पायमान नाहीं होना धीर वीर पना तैं कायरता छांड़ि वैर विरोध छांड़ि समता भाव तैं परमात्मा का ध्यान में लीन हुआ सहना सो तप है। वहुरि समस्त जीवनि कूं उलझाने वाले राग द्वेपनि कूं जीतना नष्ट करना सो तप है। वहुरि यों याचना रहित भिक्षा के अवसर में श्रावक का घर में नवधा भक्ति करि हस्त में धरा खारा अलूणा कड़वा खाटा लूखा चीकना रस नीरस तिस में लोलुपता अर संक्लेश रहित निर्दोष प्रासुक आहार एक वार भक्षण करना सो तप है। वहुरि जो पंच समिति का पालन अर मन, वचन, काय कूं चलायमान नाहीं करना अपना राग-द्वेप रहित आत्मानुभव करना सो तप है। जो स्वपर तत्व की कथनी का निर्णय करना चार अनुयोग का अभ्यास करि धर्म सहित काल व्यतीत करना सो तप है। वहुरि अभिमान छांड़ि विनय रूप प्रवर्तना कपट छांड़ि सरल परिणाम

धारना क्रोध छांड़ि क्षमा ग्रहण करना लोभ त्यागि निर्वाञ्छक होना सो तप है। जाकरि कर्म का समूह का नाश करि आत्मा स्वाधीन हो जाय सो तप है। जो श्रुत का अर्थ का प्रकाश करना व्याख्यान करना आप निरन्तर अभ्यास करै अन्य कूं अभ्यास करावै सो तप है। तपस्वीन का देवनि का इन्द्र स्तवन करै भक्ति का प्रकाश करै। तप करि केवल ज्ञान उत्पन्न होय है तप का अचिंत्य प्रभाव है। तप के मांहि परिणाम होना अति दुर्लभ है। नरक तिर्यंच देवनि में तप की योग्यता ही नाहीं एक मनुष्य गति में होय मनुष्य में हू उत्तम कुल जाति बल-बुद्धि इन्द्रियनि की पूर्णता जाकें होय तथा रागादिकन की मन्दता जाकें होय तथा विषयनि की लालसा जाकें नष्ट भई होय ताकै होय है अर तप द्वादश प्रकार है जाकी जैसी शक्ति होय तिस प्रमाण धारण करो। बालक करो वृद्ध करो धनाढ्य करो निर्धन करो बलवान करो निर्बल करो। सहाय सहित होय सो करो सहाय रहित होय सो करो भगवान को प्ररूप्यो तप किसी कै हू करने कूं अशक्य नाहीं है। जैसें वाय, पित्त, कफादिकनि का प्रकोप नाहीं होय। रोग की वृद्धि नाहीं होय जैसें शरीर रत्न-त्रिय को सहकारी बन्यों रहै तैसें अपना संहनन बल-वीर्य देखि तप करो तथा देश काल आहार की योग्यता देखि तप करो जैसें तप में उत्साह-वध तो रहै परिणामनि में उज्ज्वलता वधती जाय तैसें तप करो तथा जो इच्छा का निरोध करि विषयनि में राग घटावना सो तप है। तप ही जीव का कल्याण है। तप ही काम कूं निद्रा कूं प्रमाद कूं नष्ट करने वाला है यातैं मद छांड़ि बारह प्रकार

तप में जैसा-जैसा करने कूं सामर्थ्य होय तैसा ही तप करो सो वारह प्रकार तप कूं आगैं न्यारी लिखैंगे। ऐसें तप धर्म कूं वर्णन किया ॥७॥

अब त्याग धर्म का वर्णन करै हैं।

त्याग ऐसें जानना जो धन सम्पदादि परिग्रह कूं कर्म का उदय जनित पराधीन अर विनाशीक अर अभिमान का उपजावने वाला तृष्णा कूं वधावनेवाला राग द्वेप की तीव्रता करने वाला हिंसादिक पञ्चपापनिका मूल जानि उत्तमपुरुष याकूं अङ्गीकार ही नाहीं किया ते धन्य हैं। कोई याकूं अङ्गीकार करि याकूं हला-हल विष समान जानि जीर्ण तृणकी ज्यों त्याग कीया तिनकी अचिं-त्य महिमा है। अर केई जीवन कै तीव्र राग भाव मंद हुआ नाहीं यातैं सकल त्यागने कूं समर्थ नाहीं अर सराग धर्म मैं रुचिधारै हैं। अर पाप तैं भयभीत हैं। ते इस धन कूं उत्तम पात्रन के उपकार के अर्थि दान में लगावें हैं, अर जे धर्म के सेवन करने वाला निर्धनजन हैं तिनके अन्न-वस्त्रादिक करि उपकार करने में धन लगावैं हैं तथा धर्म के आयतन जिन-मन्दिरादिक में जिन सिद्धान्त लिखाय देने में तथा उपकरणनि में पूजनादिक प्रभावना में लगावैं हैं। तथा दुःखित दरिद्री रोगनि के उपकार में तन, मन, धन करुणावान होय लगावें हैं ते धन जीतव्य कूं सफल करें हैं। दान है सो धर्म को अङ्ग है यातैं अपनी शक्ति प्रमान भक्ति करि गुणनि के धारक उज्ज्वल पात्रनि को दान देना है सो परलोक कूं जावते महान् सुख सामिग्री कूं ले जावैं हैं। सो निर्विघ्न स्वर्ग

कूं तथा भोग भूमि कुं प्राप्त करने वाला जानो। दान की महिमा तो अज्ञानी बाल-गोपाल हू कहैं हैं। जो पूर्वे दान दिया है सो नाना प्रकार सुख सामिग्री पाई है। अर देगा सो पावेगा। तातैं जो सुख सम्पदा का अर्थी होय सो दान ही में अनुराग करो। अर जे दान करने में उद्यमी नाहीं केवल मरण पर्यंत धन का संचय करने में उद्यमी हैं ते इहां तीव्र आर्त परिणाम तैं मरि सर्पादिक दुष्ट तिर्यंच गति पाप नरक निगोद कूँ जाय प्राप्त होय हैं। धन कहा लार जायगा, धन पावना तो दान ही तैं सफल है, दान रहित का धन घोर दुःखनि की परिपांटी का कारण हैं। अर इहां हू कृपण घोर निन्दा कूं पावै है कृपण का नाम भी लोग नाहीं कहैं हैं। कृपण सूमका नाम कूं लोक अमङ्गल मानै हैं। जामैं औगुण दोष हू होय तो दोष ढकि जाय है। दानी का दोष दूरि भागै है दान करि ही निर्मल कीर्त्ति जगत में विख्यात होय है। दान देने करि वैरी हू चरननि में पड़ै है, नमै है। दान देने तैं वैरी वैर छांड़े है, अपना हित करने वाला मित्र होजाय है, जगत में दान वड़ा है। थोड़ा सा दान हू सत्यार्थ भक्ति करि करने वाला भोग भूमिका तीन पल्य पर्यंत भोग-भोग कर देव लोक में जाय है। दैना ही जगत में ऊंचा है। दान दैना तब विनय संयुक्त स्नेह का वचन सहित देना। अर दानी हैं ते ऐसा अभिमान नाहीं करै हैं जो हम इसका उपकार करैं हैं, दानी तौ पात्र कूं अपना महा उपकार करने वाला मानें हैं। जो लोभ रूप अंधकूप में पड़ने का उपकार, पात्र विना कौन करै। पात्र विना लोभियों का लोभ नाहीं छूटता अर पात्र बिना संसार के उद्धार

करने वाला दान कैसैं वनता। यातैं धर्मात्मा जननि के तो पात्र के मिलने समान अर दान के देने समान अन्य कोऊ आनन्द नाहीं है। वड़ापना, धनाढ्यपना, ज्ञानीपना, पाया है। तो दान ही में उद्यम करो। छयकाय के जीवनि कूँ अभयदान देहू अभक्ष्य का त्याग करि वहु आरम्भ के घटावने करि देखि सोधि मेलना धरना यत्नाचार विना निर्दयी होय नाहीं प्रवर्त्तन। किसी प्राणी मात्र कूँ मन वचन कायतें दुःखित मति करो। दुःखीन की करुणा ही करो यो ही गृहस्थ के अभयदान है। यातैं संसार में जन्म मरण रोग शोक दरिद्र वियोगादिक संताप का पात्र नाहीं होओगे। बहुरि संसार के वधावने वाले, हिंसा कूं पुष्ट करने वाले तथा मिथ्या धर्म की प्ररूपणा करने वाले तथा युद्ध शास्त्र शृंगार शास्त्र मायाचार के शास्त्र वैद्यक शास्त्र रस रसायण मंत्र-जंत्र मारण वशीकरणादिक शास्त्र महापाप के प्ररूपक हैं, इनकूँ अति दूरतैं ही त्यागि भगवान् वीतराग सर्वज्ञ का कह्या दयाधर्म कूँ प्ररूपण करने वाला स्याद्वाद रूप अनेकान्त का प्रकाश करने वाले नय प्रमाण करि तत्वार्थ की प्ररूपण करने वाले शास्त्रनिकूं अपने आत्मा कूं पढ़ने पढ़ावने करि आत्मा का उद्धार के अर्थि अपने अर्थिदान करो, अपनी सन्तान कूं ज्ञान दान करो तथा अन्य धर्म वुद्धि धर्म के रोचक इच्छक तिनकूं शास्त्र दान करो ज्ञान कें इच्छक हैं ते ज्ञान दान के अर्थि पाठशाला स्थापन करैं हैं, जातैं धर्म का स्थम्भ ज्ञान ही है। जहाँ ज्ञान दान होयगा तहाँ धर्म रहैगा यातैं ज्ञान दान मैं प्रवर्तन करो। ज्ञान दान प्रभावतैं निर्मल केवल ज्ञान कूं पावैं हैं। बहुरि रोग का नाश करने वाला प्रासुक औषधि

का दान करो,औषधदान बड़ा उपकारक है। रोगी कूं सीधी तैयार औषध मिलै है ताका बड़ा आनन्द है। अर निरधन होय तथा जाके टहल करने वाला नाहीं होय ताकूं औषध जो करी हुई तय्यार मिल जाय तो निधान का लाभ समान मानै है। औषध-लेय नीरोग होय है सो समस्त व्रत तप संयम पालै है, ज्ञान का अभ्यास करै है। औषध दान है ताकें वात्सल्य गुण स्थिति करण गुण निर्विचिकित्सा गुण इत्यादिक अनेक गुण प्रगट होय हैं। औषधदान के प्रभावतैं रोग रहित देवनि का वैक्रियक देह पावै है। बहुरि आहारदान समस्त दाननि में प्रधान है। प्राणी का जीवन, शक्ति, बल, बुद्धि ये समस्त गुण आहार बिना नष्ट होजाय हैं। आहार दिया सो प्राणी कूं जीवन बुद्धि शक्ति समस्त दीना। आहार दानतैं ही मुनि श्रावक का सकल धर्म प्रवर्त्तै है। आहार बिना मार्ग भ्रष्ट हो जाय, आहार है सो समस्त रोग का नाश करने वाला है। जो आहार दान दे है सो मिथ्या दृष्टी हू भोग भूमि में कल्प वृक्षनि का दशांग भोग कूं असंख्यात काल भोगै अर क्षुधातृषादिक की बाधा रहित हुआ आंवला प्रमान तीन दिन के आंतरै भोजन करै। समस्त दुःख क्लेश रहित असंख्यात वर्ष सुख भोगि देवलोकनि में जाय उपजै है। यातैं धन कूं पाय च्यार प्रकार के दान देने मैं प्रवर्तन करो। अर जो निर्धन है सोहू अपना भोजन मैं जेता बनैं तेता दान करो आप कूं आधा भोजन मिलै तीमैं तैं हूं ग्रास दोइ ग्रास दुःखित बुभुक्षित दीन दरिद्रीनि के अर्थ देवो। बहुरि मिष्ट वचन बोलने का बड़ा दान है आदर सत्कार विनय करना स्थान देना कुशल पूछना

ये महा दान है। बहुरि दुष्ट विकल्पनि का त्याग करो पापनि में प्रवृत्ति का त्याग करो चार कषायनि का त्याग करो विकथा करने का त्याग करो पर के दोष सत्य असत्य कदाचित मति कहो। बहुरि अन्याय का धन ग्रहण करने का दूरि ही तें त्याग करो भो ज्ञानी जन हो जो अपना हित के इच्छक हो तो दुखित जननि कूं तो दान करो। अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि गुणनि के धारक तिनका महा विनय सन्मान करो समस्त जीवनि में करुणा करो मिथ्या दर्शन का त्याग करो। राग द्वेष मोह के धारक कुदेव अर आरंभ परिग्रह के धारक भेष धारी अर हिंसा के पोषक राग द्वेष कूं पुष्ट करने वाले मिथ्या दृष्टिनि के शास्त्र इन कूं वंदना स्तवन प्रशंसा करने का त्याग करो क्रोध मान माया लोभ इनके निग्रह करने में बड़ा उद्यम करो क्लेश करने के कारण अप्रिय वचन, गाली के वचन, अपमान के वचन, मद सहित वचन कदाचित मति कहो इत्यादिक जो परके दुःख के कारण तथा अपना यश कूं नष्ट करने वाला धर्म कूं नष्ट करने वाला मन वचन काय के प्रवर्तनि का त्याग करो ऐसें त्याग धर्म का संक्षेप वर्णन किया ॥ ८ ॥

अथ अकिंचन्य धर्म का स्वरूप कहिये हैं। ॥९॥

जो अपना ज्ञान दर्शन मय स्वरूप बिना अन्यकिंचिन्मात्र हू हमारा नाहीं है मैं किसी अन्य द्रव्य का नाही हूं। मेरा कोऊ अन्य द्रव्य नाहीं है ऐसा अनुभवनि कूं आकिंचन्य कहिये हैं। भो आत्मन अपना आत्मा कूं देहतें भिन्न अर ज्ञान मय अन्य

द्रव्य की उपमा रहित अर स्पर्शरस गंधवर्ण रहित अर अपना स्वाधीन - ज्ञानानंद सुख करि पूर्ण परम अतींद्रिय भय रहित ऐसा अनुभव करो। भावार्थ—ये देह है सो में नाहीं देह तो रस रुधिर हाड़ मास चाम मय जड़ अचेतन है। मैं इस देहतें अत्यंत भिन्न हूँ ये ब्राह्मण क्षत्रियादिक जाति कुल देह के हैं मेरे ये नाहीं हैं। स्त्री पुरुष नपुंसकादि लिंग देह के हैं मेरें नाहीं यो गोरापना, सावलापना, राजापना, रंकपना, स्वामीपना, सेवकपना, पंडितपना, मूर्खपना इत्यादि समस्त रचना कर्म का उदय जनित देह के हैं मैं तो ज्ञायक हूँ। ये देह का संबंधी मेरा स्वरूप नाहीं हैं मेरा स्वरूप अन्य द्रव्य की उपमा रहित है ताता ठंडा नरम कठोर लूखा चीकना हलका भारी अष्ट प्रकार स्पर्श हैं ते हमारा रूप नाहीं पुद्गल के रूप हैं ये खाटा मीठा कड़वा कसायला चिरपरा पंच प्रकार रस अर सुगंध दुर्गन्ध दोय प्रकार का गंध अर काला पीला हरा स्वेत रक्त ये पंच वर्ण मेरा स्वरूप नाहीं पुद्गल का है मेरा स्वभाव तो सुख करि परि पूर्ण है परंतु कर्म के आधीन दुख करि व्याप्त हो रहा है। मेरा स्वरूप इन्द्रिय रहित अतींद्रिय है इन्द्रियां पुद्गल मय कर्म करि की हुई हैं। मैं समस्त भय रहित अविनाशी अखंड आदि अंत रहित शुद्ध ज्ञानरूप भाव हूँ परंतु अनादि काल तें जैसे सुवर्ण अर पाषान मिल रहा है तैसे तथा क्षीर नीर ज्यौं कर्मनि करि अनादि काल तैं मिल रहा हूं तिन मैं हूं मिथ्यात नाम कर्म का उदय करि अपना स्वरूप का ज्ञान रहित होय देहादिक पर द्रव्यनि कूं आपका स्वरूप जानि अनंत काल मैं परि भ्रमण करया अब कोऊ किंचित आवरणादिक के दूर होने

तैं श्री गुरुनि का उपदेश्या परमागम का प्रशादतैं अपना और पर का स्वरूप का ज्ञान भया है जैसें रत्ननि का व्यौहारी ज़ड़े हुए पंच-वर्ण रत्ननिके आभरणनि मैं गुरू की कृपा तैं अर निरंतर अभ्यास तैं मिल्या हुआ हू डांक का रंग अर माणिक्य का रंग कूं अर तोल कूं अर मोल कूं भिन्न २ जाने हैं तैसे परमागम का निरंतर अभ्यास तैं मेरा ज्ञान स्वभाव मैं मिल्या हुवा राग द्वेष मोह कामादिक मैल कूं भिन्न जराया है अर मेरा ज्ञायक स्वभाव कूं भिन्न जताया है तातैं अब जैसे राग द्वेष मोहादिक भाव कर्मनि में अर कर्मनि के उदय तैं उपजे विनाशीक शरीर पर वार धन संपदादि परिग्रह में ममता बुद्धि मेरे जैसे फिर अन्य जन्म में हू नाहीं उपजै तैसे आकिंचन्य भावना अनादि कालतैं नाहीं उपजी समस्त पर्यायनि कूं अपना रूप मान्या तथा राग द्वेष मोह क्रोध कामादिक भाव कर्म कृत विकार थे तिन कूं आप रूप अनुभव करि विपरीत भावनि तैं घोर कर्म बंध कूं कीया अब मैं आकिं-चन्य भावना मैं विघ्न का नाश करने वाला पंच परम गुरुनि का शरण तैं आकिंचन्य ही निर्विघ्न चाहूं हूं और त्रैलोक्य मैं कोऊ अन्य वस्तु कूं नाहीं वांछूं हूं। यो आकिंचन्य पणो ही संसार समुद्र तैं तारणे कूं जिहाज होहू जो परिग्रह कूं महाबंध जानि छांड़ना सो आकिंचन्य है आकिंचन्यपणा जाके होय है ताकै परिग्रह मैं वांछा रहै नाहीं है आत्मध्यान मैं लीनता होय है देहादिकनि में वाह्य भेष मैं आपौ नाहीं रहै है अर अपना स्वरूप जो रत्न त्रयतामें प्रवृत्ति होय है इंद्रियन के विषयन मैं दौड़ता मन रुकि जाय है देह ते स्नेह छूटि जाय है संसारिक देवनि का सुख इन्द्र अहमिंद्र

चक्रवर्त्तीनिका सुख हू दुख दीखै है। इनमें वांछा कैसें करैं परिग्रह रत्न सुवर्ण राज्य ऐश्वर्य स्त्री-पुत्रादिकनि कूं जीर्ण तृण में जैसें ममता रहित छांड़ने में विचार नाहीं तैसें परिग्रह छाड़ै है आकिंचन्य तो परम वीतराग पणा है जिनकै संसार को अन्त आगयौ तिनके होय है जाकै आकिंचन्यपना होय ताकैं परमार्थ जो शुद्ध आत्मा ताका विचारने की शक्ति प्रकट होय ही अर पंच परमेष्टी में भक्ति होय ही अर दुष्ट विल्यनिका नाश होय ही अर इष्ट अनिष्ट भोजन में राग-द्वेष नष्ट हो जाय है। केवल उदर रूप खाड़ा भरना अन्य रस नीरस भोजन में विचार जाता रहै है। समस्त धर्मनि में प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्ष का निकट समागम कराने वाला है अनादि काल तैं जेते सिद्ध भये हैं ते आकिंचन्य तैं ही भये हैं अर आगें जो जो तीर्थंकरादि सिद्ध होंइगे ते आकिंचन्यपणा ही ते होवेंगे। यद्यपि आकिंचन्य धर्म प्रधान करि साधु जननि कै ही होय है तथापि एक देश धर्म का धारक गृहस्थ उस धर्म के ग्रहण करने की इच्छा करै है अर गृहचारा में मन्दरागी होय अतिविरक्त होय है प्रमाणीक परिग्रह धारै है आगामी वांछा रहित है अन्याय का धन परिग्रह कदाचित ग्रहण नाहीं करै है। अल्प परिग्रह में अति संतोपी होय रहै है परिग्रह कूं दुःख का दैने वाला अर अत्यन्त अस्थिर मानै है ताकैं ही आकिंचन्य भावना होय है ऐसें आकिंचन्य धर्म का वर्णन किया ॥ ६ ॥

अब उत्तम ब्रह्मचर्य का स्वरूप कहिए हैं ॥१०॥

समस्त विपयनि में अनुराग छांड़ करकें जो ज्ञानका स्वभाव आत्मा ता में जो चर्य्या कहिये प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है। भो ज्ञानी जन हो यो ब्रह्मचर्य्य नाम व्रत वड़ो दुर्धर है इरेक वापड़ा विपयनि के वस हुआ आत्मज्ञान रहित हैं ते याके धारवे कूं सामर्थ्य नाहीं हैं। जो मनुष्यनि में देव के समान हैं ते धारवे कूं समस्त हैं अन्य रङ्क विपयनि की लालसा के धारक ब्रह्मचर्य धारने कूं समर्थ नाहीं हैं यों ब्रह्मचर्य व्रत महा दुद्धर है। जाकें ब्रह्मचर्य होय ताकै समस्त इन्द्रिय अर कपायनिका जीतना सुलभ है। भो भव्य हो स्त्रीन का सुख में रागी जो मन रूप मदोन्मत्त हस्ती ताकूं वैराग्य भावना में रोक करकैं अर विपियां की आशा का अभाव करकें दुद्धर ब्रह्मचर्य धारण करो यों काम है सो चित्त रूप भूमि में उपजै है याकी पीड़ा करि नाहीं करने योग्य ऐसे पाप करैं हैं जातैं यो काम मनकूं नष्ट करै है याही तैं याकूं मनमथ कहिये हैं ज्ञान नष्ट हो जाय तदि ही स्त्रीनि का महा दुर्गन्ध निंद्य शरीर कूं रागी हुआ सेवै है अर काम करि अंध हो जाय है तदि महा अनीति कूं प्राप्त हो अपनी पर की नारि का विचार ही नाहीं करैं है। जो इस अन्याय तैं मैं यहाँ ही मारा जाऊंगा। राजा का तीव्र दंड होयगा यश मलीन होयगा धर्म भ्रष्ट हो जाऊंगा सत्यार्थ बुद्धि नष्ट हो जायगी मरण करि नरकनि के घोर दुःख असंख्यात काल पर्यंत भोग फिर असंख्यात तिर्यंचनि के दुःख रूप अनेक भव पाय कुमानुषनि में अन्धा, लूला, कूबड़ा, दरिद्री इन्द्रिय

विकल, बहरा, गूंगा, चाण्डाल भील चमारनि के नीच कुलनि में उपजि फिर त्रसस्थावरनि में अनंतकाल परिभ्रमण करूंगा। ऐसा सत्य विचार कामी कै नाहीं उपजै है। इन काम के नाम ही जगत के जीवनि कूँ प्रकट करैं हैं। कं कहिये खोटा दर्प अर्थात् गर्व उपजावै तातैं कंदर्प कहिये हैं। अति कामना जो वांछा उपजाय दुःखित करै तातैं याकूँ काम कहिये है या करि अनेक तिर्यंचनि के तथा मनुष्यनि के भवनि में लड़ि-लड़ि मरिये तातैं मार कहिये हैं संवर को बैरी तातैं संवरारि कहिये। ब्रह्म जो तप संयम तातैं सुवर्ति कहिये चलायमान करै तातैं ब्रह्म सू कहिये इत्यादिक अनेक दोषनि कूँ नाम ही कहै हैं या जानि मन वचन काय तैं अनुराग करि ब्रह्मचर्य व्रत पालो ब्रह्मचर्य करि सहित ही संसार के पार जावोगे। ब्रह्मचर्य बिना व्रत तप समस्त असार हैं ब्रह्मचर्य बिना सकल काय क्लेश निष्फल हैं। वाह्य जो स्पर्शन इन्द्रिय का सुख तैं विरक्त होय अभ्यंतर परमात्म स्वरूप आत्मा ताकी उज्ज्वलता देखहु जैसें अपना आत्मा काम के राग करि मलीन नाहीं होय तैसें यत्न करौ ब्रह्मचर्य करि ही दोऊं लोक भूषित होय है। बहुरि जो शील की रक्षा चाहो हो अर उज्ज्वल यश चाहो हो अर धर्म चाहो हो अर अपनी प्रतिष्ठा चाहो हो तो चित्त में परमागम की शिक्षा इस प्रकार धारण करो स्त्रीनि की कथा मति श्रवण करो— मति कहो, स्त्रीनि का राग-रङ्ग कुतूहल चेष्टा गति देखो ये मेला देखना परिणाम बिगाड़ै है व्यभिचारी पुरुषनि के संगति का त्याग करना भांग, जरदा मादक वस्तु भक्षण नाहीं करना तांबूल तथा पुष्पमाला अत्तर फुलेलादि शील भङ्ग व्रत भंग के कारण दूर तैं

टालो। गीत नृत्यादि कामोद्दीपन के कारणनि का परिहार करो रात्रि भक्षण टालो विकार करने का कारण लोक विरुद्ध वस्त्र आभरण मति पहरो एकान्त में कोऊ ही स्त्री-मात्र का संसर्ग मति करो रसना इन्द्रिय की लम्पटता छांडो जिह्वा की लम्पटता को लार हजारों दोष आवैं हैं यातैं समस्त ऊंचा पणा यश धर्म नष्ट हो जाय है। जिह्वा इंद्रिय का लम्पटी कै सन्तोष नष्ट हो जाय। सम भाव कूँ स्वप्न में हू नाहीं जानै लोक-व्यवहार भ्रष्ट हो जाय, ब्रह्म-चर्य भङ्ग हो जाय यातैं आत्मा के हित का इच्छुक एक ब्रह्मचर्य की ही रक्षा करो ऐसे धर्म के दश लक्षण सर्वज्ञ भगवान् कहे हैं। जाके ये दश चिह्न प्रगट होय ताके धर्म है। उत्तम क्षमादिकनि के घातक धर्म के वैरी क्रोधादिक हैं, तिनतैं अनेक दोष उपजैं हैं; तिनकी भावना करो अर क्षमादिकन में अनेक गुण हैं तिनकी भावना वारम्बार सदैव भावो। जो क्षमा है सो अपना प्राणनि की रक्षा है, धन की रक्षा है, यश की रक्षा है, धर्म की रक्षा है। व्रतशील संयम सत्य की रक्षा एक क्षमातैं ही है। कलह के घोर दुःखतैं अपनी रक्षा एक क्षमाही करै है। समस्त उपद्रव तथा वैरतें क्षमा ही रक्षा करै है। वहुरि क्रोध है सो धर्म अर्थ काम मोक्ष का मूलतैं नाश करै है। अपना प्राणनि का नाश करै है। क्रोधतैं प्रचण्ड रौद्र ध्यान प्रगट होय है, क्रोधी एक क्षणमात्र में आप मरि जाय है। कूआ में, वावणी में, तालाव, नदी, समुद्र में डूवि मरै है। शस्त्र घात विष भक्षण ऊंपापातादि अनेक कुकर्म करि आत्मघात करै है। अन्य के मारने की क्रोधी कैं दया नाहीं होय है। क्रोधी होय सो अपने पिता कूं, पुत्र कूं, भ्राता कूं, मित्र

कूं स्वामीकूं सेवककूं गुरुकूं एक क्षणमात्र में मारै है। क्रोधी घोर नरक का पात्र है, क्रोधी महा भयंकर है, समस्त धर्म का नाश करने वाला है। क्रोधीकें सत्य वचन नाहीं होय है। आपकूँ अर धर्मकूँ समभावकूँ दग्ध करने वाला कुवचन रूप अग्नि कूं उगलै है। क्रोधी होय सो धर्मात्मा संयमी शीलवान मुनि अर श्रावकनिकूं चोरी अन्यायी के झूठे दोष कलंक लगाय दूषित करै है। क्रोध के प्रभाव तैं ज्ञान कुज्ञान होय है, आचरण विपरीत हो जाय है, श्रद्धान भ्रष्ट हो जाय है, अन्याय में प्रवृत्ति हो जाय है, नीति का नाश होय है, अति हठी होय विपरीत मार्ग का प्रवर्त्तक होय है, धर्म अधर्म उपकार अपकार का विचार रहित कृतघ्नी होय है यातैं वीतराग धर्म के अर्थी हो तो क्रोध-भाव कूं कदाचित प्राप्त मति होहू, बहुरि मार्दव जो कठोरता रहित कोमल परिणामी जीव में गुरुनि का बड़ा अनुराग वर्त्ते है। मार्दव परिणामी कूं साधु पुरुप हू साधु मानै है तातैं कठोरता रहित पुरुप ही ज्ञान का पात्र होय है। मान रहित कोमल परिणामी कूं जैसा गुण ग्रहण कराया चाहै तथा जैसी कला सिखाया चाहै तैसी कला गुण प्राप्त हो जाय है। समस्त धर्म का मूल समस्त विद्या का मूल विनय है। विनयवान समस्त के प्रिय होय है अन्य गुण जामें नाहीं होय सो पुरुप हू विनय तैं मान्य होय है विनय परम आभूपण है। कोमल परिणाम में ही दया बसै है मार्दव तैं स्वर्गलोक की अभ्युदय सम्पदा निर्वाण की अविनाशीक सम्पदा प्राप्त होय है, अर कठोर परिणामी कूं शिक्षा नाहीं लागै है, साधु पुरुप हैं तिनका परिणाम हू अविनयी कठोर परिणामी कूं दूर ही तैं

त्याग्या चाहै है, जैसें पाषाण में जल नाहीं प्रवेश करै तैसें सद्-गुरुनि का उपदेश कठोर पुरुष का हृदय में प्रवेश नाहीं करै है जातैं जो पाषाण काष्टादिक हू नरमाई लिये होय ताका जो वाल-वाल मात्र हू जहां घड़्या चाहै छीला चाहै तहां वाल मात्र ही ही उतरि पावे तदि जैसी सूरत मूरत बनाया चाहै तैसें ही बनै है अर कोमलता रहित में जहाँ टांची लगावे तहां चिड़क उतरि दूर पड़े। शिल्पी का अभिप्राय माफिक घड़ाई में नाहीं आवै तैसे कठोर परिणामी कूं यथावत शिक्षा नाहीं लागै अभिमानी कोऊ कूं प्रिय नाहीं लागै अभिमानी का समस्त लोक विना किया वैरी होय है, अर परलोक में अति नीच तिर्यंच मनुष्यनि में असंख्यात काल नाना तिरस्कार का पात्र होय है यातैं कठोरता त्यागि मार्दव भावना ही निरंतर धारण करो वहुरि कपट समस्त अनर्थनिका मूल है प्रीति अर प्रतीत का नाश करने वाला है कपटी मैं असत्य छल, निर्दयता, विश्वास घातादि समस्त दोष वसे हैं कपटी में गुण नाहीं समस्त दोष ही दोष वास करै हैं। मायाचारी यहां अपयश कूं पाय तिर्यंच नरकादिक गतिनि मैं असंख्यात काल भ्रमण करै है मायाचारी रहित आर्जव धर्म का धारक मैं समस्तुश वसै हैं समस्त लोकनि कूँ प्रीतिका अर अप्रतीतिका कारण है। परलोक में देवनि करि पूज्य इन्द्र यतींद्रादिक होय है यातें सरल परिणाम हो आत्मा का हित है वहुरि सत्य वादी मैं समस्त गुण तिष्ट है सदा काल कपटादि दोष रहित जगत में मान्यता कूँ हुआ प्राप्त होय है अर परलोक में अनेक देव मनुष्यादिक जाकी आज्ञा मस्तक ऊपरि धारै हैं अर असत्यवादी इहां ही अपवाद निन्दा करने

योग्य हैं। समस्त के अप्रतीति का कारण है बांधव मित्रादिक अवज्ञा करि छांड़ै हैं राजानि करि जिह्वा छेद सर्वस्व हरणादिक दंड पावै हैं अर परलोक में तिर्यंच गति में वचन रहित एकेंद्रिय विकलत्रययादि असंख्यात पर्याय धारैं है यातैं सत्य धर्म का धारण ही श्रेष्ठ है वहुरि जाका शुचि आचरण होय सो ही जगत में पूज्य है शुचि नाम पवित्रता उज्ज्वलता का है जाका आहार विहारादिक समस्त प्रवृत्ति हिंसा रहित हिंसा का भयतैं यत्ना चार सहित होय अर अन्य के धन में अन्य की स्त्री में कदाचित स्वप्न में वांछा नाहीं होय सो ही उज्ज्वल आचरण को धारक है तिसकूं ही जगत पूज्य मानें हैं निर्लोभी का समस्त लोक विश्वास करैं है सो ही लोक में उत्तम है। ऊर्द्ध्व लोक का पात्र है लोभ रहित का बड़ा उज्ज्वल यश प्रगटैं है। लोभी महा मलीन समस्त दोषनि का पात्र है निंद्यकर्म में लोभी की प्रीति होय है। लोभी के ग्राह्य अग्राह्य खाद्य अखाद्य कृत्य अकृत्य का विचार ही नाहीं होय है इहां हू लोक में निन्द्य धर्म तैं पराङ्मुखता निर्दयता प्रकट देखिये है। लोभी धर्म अर्थ काम कूं नष्ट करि कुमरण करि दुर्गति जाय है लोभी हृदय में गुण अवकाश नाहीं पावै है। इस लोक परलोक में लोभी कूं अचिंत्य क्लेश दुःख प्राप्त होय है यातैं शौच धर्म का धारण ही श्रेष्ठ है। वहुरि संयम ही आत्मा को हित है इस लोक में संयम का धारक समस्त लोकनि के वन्दने योग्य है। समस्त पापनि करि नाहीं लिये है याका इस लोक में परलोक में अचिंत्य महिमा है अर असंयमी है सो प्राणनि का घात अर विषयनि में अनुराग करि

अशुभ कर्म को वन्ध करै है। यातैं संयम धर्म ही जीव का हित है बहुरि तप है सो कर्म का संवर निर्जरा करने का प्रधान कारण है तप ही आत्मा कूं कर्म मल रहित करै, तप का प्रभावतैं यहां ही अनेक ऋद्धि प्रकट होय है तप का अचिंत्य प्रभाव है तप विना काम कूं निन्द्रा कूं कौन मारै तप विना वांछा कूं कौन मारै, इन्द्रियनि का मारने में तप ही समर्थ है आशा रूपी पिशाचणी तप ही तैं मारी जाय है काम का विजय तप ही तैं होय है। तपका साधन करने वाला परीषह उपसर्ग आवतें हू रत्नत्रय धर्म तैं नाहीं छूटै यातैं तप धर्म ही धारण करना उचित है। तप विना संसार तैं छूटना नाहीं है। जातैं चक्रीपना का हू राज्य छांड़ि तप धारै, सो त्रैलोक्य में वन्दने योग्य पूज्य होय है अर तप कूं छांड़ि राज्य ग्रहण करै सो अतिनिंद्य थुथुकार करने योग्य है तृण तैं हूं लघु होय यातैं त्रैलोक्य में तप समान महान अन्य नाहीं, वहुरि परिग्रह समान भार नाहीं। जेते दुःख, दुर्ध्यान, क्लेश, वैर, वियोग, शोक, भय, अपमान हैं ते समस्त परिग्रह के इच्छक कै है जैसें जैसें परिग्रह तैं परिणाम निराला होय तैसें तैसें खेद रहित होय है जैसे बड़ा भार करि दुःखित पुरुष भार रहित होय तदि सुखित होय तैसें परिग्रह की वासना मिटै सुखित होय है। समस्त दुःख अर समस्त पापनि का उपजावने-का स्थान ये परिग्रह है जैसें नदी करि समुद्र तृप्त नाहीं होय अर ईंधन करि अग्नि तृप्त नाहीं होय है आशा रूप खाड़ा निधिनि तैं नाहीं भरै सो अन्य सम्पदा तैं कैसें भरै अर ज्यों-ज्यों परिग्रह की आशा का त्याग करो त्यों-त्यों भर तो चल्यो जाय

तातें समस्त दुःख दूरि करने को त्याग ही समर्थ है त्याग ही तें अन्तरङ्ग बहिरङ्ग बन्धन रहित होय अनन्त सुखके धारक होहुगे परिग्रह के बन्धन में बंधे जीव परिग्रह त्याग तें ही छूटि मुक्ति होय तातें त्याग धर्म धारण ही श्रेष्ठ है बहुरि हे आत्मन् यो देह अर स्त्री-पुत्र धन-धान्य राज्य ऐश्वर्यादिकनि में एक परमाणु मात्र हू तुम्हारा नाहीं है ये पुद्गल द्रव्य हैं, जड़ हैं, विनाशीक हैं। अचेतन हैं इन पर द्रव्यनि में (अहं) ऐसा संकल्प तीव्र दर्शन मोह कर्म का उदय बिना कौन करावै इस पर द्रव्य में आत्म-संकल्प मेरे कदाचित मति होहू मैं अकिंचन्य हूं या आकिंचन्य भावना के प्रभाव तें कर्म का लेप रहित यहां ही समस्त बन्ध रहित हुआ तिष्टै है साक्षात् निर्वाण का कारण आकिंचन्य धर्म ही धारण करो। बहुरि कुशील महापाप है, संसार परिभ्रमण का बीज है ब्रह्मचर्य के पालने वाले तें हिंसादिक पापनि का प्रचार दूरि भागै है समस्त गुणनि की सम्पदा यामें बसै है जितेंद्रियता प्रकट होय है ब्रह्मचर्य तैं कुलजात्यादि भूषित होय है परलोक में अनेक ऋद्धि का धारक महर्द्धिक देव होय है ऐसें भगवान अरहंत देवाधिदेव के मुखारविंद तें प्रकट हुआ दश लक्षण धर्म आत्मा का स्वभाव है पर वस्तु नाहीं है क्रोधादिक कर्म जनित उपाधि दूरि होतें स्वयमेव आत्मा का स्वभाव प्रगट होय है। क्रोध के अभाव तें क्षमा गुण प्रगट होय है, मान के अभाव तें मार्दव गुण प्रगट होय है, माया के अभाव तें आर्जव गुण प्रकट होय है लोभ के अभाव तैं शौच धर्म प्रगट होय है, असत्य के अभाव तें सत्य धर्म प्रगट होय है, कषायनि के अभाव तैं संयम गुण प्रगट

होय है, इच्छाके अभाव तैं तप गुण प्रगट होय है। पर में ममता के अभाव तैं त्याग धर्म प्रगट होय है पर द्रव्यनि तैं भिन्न अपने आत्मानुभव न होने से आकिंचन्य धर्म प्रगट होय है। वेदनि के अभाव तैं आत्मस्वरूप में प्रवृत्ति तैं ब्रह्मचर्य धर्म प्रगट होय है यों दश प्रकार धर्म आत्मा को स्वभाव है यों धर्म किसी तैं खोस्या खुसै नाहीं, लुस्या लुटै नाहीं, चोर चोरि सकै नाहीं, राजा का लूट्या लुटै नाहीं, स्वदेश में परदेश में सदा याका स्वरूप छूटै नाहीं, किसी का विगाड़्या बिगड़ै नाहीं, धन करि मोल आवै नाहीं, आकाश में, पाताल में, दिशा में, विदिशा में पहाड़ में, जल में, तीर्थ में मन्दिरजी में कहीं धरया नाहीं। आत्मा का निज स्वभाव है। याका लाभ सम्यग्ज्ञान श्रद्धान तैं होय है अर ऐसा सुगम है जो बालक, वृद्ध, युवा, धनवान, निर्धन, बलवान, निर्बल सहाय सहित, असहाय, रोगी, निरोगी समस्त के धारण करने में आवने योग्य स्वाधीन है। धर्म के धारने में कुछ खेद क्लेश अप-मान भय विषाद कलह शोक दुःख कदाचित नाहीं दुर्लभ है नाहीं कोऊ ठावना नाहीं दूर देश जावना, नाहीं क्षुधा तृषा शीत उष्णता की वेदना का आवना, नाहीं किसी का विसम्वाद झगड़ा है नाहीं, अत्यन्त सुगम समस्त क्लेश दुःख रहित स्वाधीन आत्मा का ही सत्य परिणमन है। यातें समस्त संसार की परि-भ्रमण तैं छूटि अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य का धारक सिद्ध अवस्था का फल है ऐसें दश लक्षण धर्म को संक्षेप करि वर्णन कीयो।

नहीं चाह वैभव पाकर के अपना मान बढ़ाने की।
नहीं चाह ज्ञानी बन करके अपना यश फैलाने की॥
नहीं चाह राजा बन करके मनमानी मौज उड़ाने की।
नहीं चाह बाबाजी बनकर अपने पैर पुजाने की॥
चाह यही है इस वाणी से सबको धर्म सुनाऊं मैं।
जिन वाणी माता की वेदी पर हँस २ बलि होजाऊं मैं॥

ह० श्रीलाल बाबाजी जैसवार,
ठि० मोतीकटरा, आगरा।
शुभ सम्वत् १९९४ वि० मिती भादवा सुदी १५
सोमवार को पूर्ण की।

मुद्रकः—बाबू कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, आगरा।